मुनि श्रीपुण्यविजयजी महाराज

जैन आगमधर और प्राकृत वाङ्मय

[प्रस्तुत निबन्ध के रचयिता मुनि श्रीपुण्यविजयजी महाराज जैनागमसाहित्य, इतिहास और पुरातत्त्व के साथ ही संस्कृत, प्राकृत भाषाओं के तलस्पर्शी विद्वान् हैं, यह महत्त्वपूर्ण जानकारी देने वाला निबन्ध सन् १९६१ में श्रीनगर (कश्मीर) में हुई अखिल भारतीय प्राच्यविद्यापरिषद् के प्राकृत और जैनधर्म विभाग के अध्यक्ष पद से प्रस्तुत किया गया आपका अभिभाषण है जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ था. मुनिश्री द्वारा किये गये कतिपय संशोधनों और परिवर्धनों के साथ वह यहां प्रकाशित किया जा रहा है.—सम्पादक]

जैन आगमधर स्थविर और आचार्य

जैनागमों में वर्त्तमान में उपलभ्यमान द्वादश अंगों की सूत्ररचना कालक्रम से भगवान् गणधर ने की. वीर-निर्वाण के बाद प्रारम्भिक शताब्दियों में इन आगमों का पठन-पाठन पुस्तकों के आधार पर नहीं, अपितु गुरुमुख से होता था. ब्राह्मणों के समान पढ़ने-पढ़ाने वालों के बीच पिता-पुत्र के सम्बन्ध की सम्भावना तो थी ही नहीं. वैराग्य से दीक्षित होने वाले व्यक्ति अधिकांशतया ऐसी अवस्था में होते थे, जिन्हें स्वाध्याय की अपेक्षा बाह्य तपस्या में अधिक रस मिलता था. अतएव गुरु-शिष्यों का अध्ययन-अध्यापनमूलक सम्बन्ध उत्तरोत्तर विरल होना स्वाभाविक था, जैन आचार की मर्यादा भी ऐसी थी कि पुस्तकों का परिग्रह भी नहीं रखा जा सकता था. ऐसी दशा में जैनश्रुत का उत्तरोत्तर विच्छेद होना आश्चर्य की बात नहीं थी. उसकी जो रक्षा हुई वही आश्चर्य की बात है. इस आश्चर्यजनक घटना में जिन श्रुतधर आचार्यों का विशेष योगदान रहा है, जिन्होंने न केवल मूल सूत्रपाठों को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया अपितु उन सूत्रों की अर्थवाचना भी दी, जिन्होंने निर्युक्ति आदि विविध प्रकार की व्याख्याएं भी कीं, एवं आनेवाली संतति के लिए श्रुतनिधिरूप महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति विरासत रूप से दे गये, उन अनेक श्रुतधरों का परिचय देने का प्रयत्न करूंगा. इन श्रुतधरों में से कुछ तो ऐसे हैं जिनका नाम भी हमारे समक्ष नहीं आया है. यद्यपि यह प्रयत्नमात्र है—पूर्ण सफलता मिलना कठिन है, तथापि मैं आपको कुछ नई जानकारी करा सका तो अपना प्रयत्न अंशतः सफल मानूंगा.

(१) सुधर्मस्वामी (वीर नि० ८ में दिवंगतः)—आचार आदि जो अंग उपलब्ध हैं वे सुधर्मस्वामी की वाचनानुगत माने जाते हैं. तात्पर्य यह है कि इन्द्रभूति आदि गणधरों की शिष्यपरम्परा अन्ततोगत्वा सुधर्मस्वामी के शिष्यों के साथ मिल गई है. उसका मूल सुधर्मस्वामी की वाचना में माना गया है. भगवती जैसे आगमों में यद्यपि भगवान् महावीर और इन्द्रभूति गौतम के बीच हुए संवाद आते हैं किन्तु उन संवादों की वाचना सुधर्मा ने अपने शिष्यों को दी जो परम्परा से आज उपलब्ध है—ऐसा मानना चाहिए, क्योंकि आगमों के टीकाकारों ने एक स्वर से यही अभिप्राय व्यक्त किया है कि तत्तत् आगम की वाचना सुधर्मा ने जम्बू को दी.

यद्यपि सुधर्मा की अंगों की वाचना का अविच्छिन्न रूप आज तक सुरक्षित नहीं रहा है फिर भी जो भी सुरक्षित है उसका सम्बन्ध सुधर्मा से जोड़ा जाता है, यह निर्विवाद है. गणधरों के वर्णनप्रसंग में सुधर्मा की जो प्रशंसा आती है उसे स्वयं सुधर्मा तो कर नहीं सकते, यह स्पष्ट है. अतएव तत्तत् सूत्रों के प्रारम्भिक भाग की रचना में आगमों के विद्यमान रूप के संकलनकर्त्ता का हाथ रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) **शय्यंभव (वीर नि० ८३ में दिवंगत :)**—अपने पुत्र मनक के लिए दशवैकालिक की रचना कर इन्होंने जैन श्रमणों के आचार का आचारांग के बाद एक नया सीमास्तम्भ डाला है, इसकी रचना के बाद इतना महत्त्व बढ़ा कि जैन श्रमणों को प्रारम्भ में जो आचारांगसूत्र पढ़ाया जाता था उसके स्थान पर यही पढ़ाया जाने लगा (व्यवहारभाष्य० उ० ३, गा० १७६) इतना ही नहीं, पहले जहाँ आचारांग के शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन के बाद श्रमण उपस्थापना का अधिकारी होता था वहाँ अब दशवैकालिक के चौथे षड्जीवनिकाय नामक अध्ययन के बाद उपस्थापना के योग्य समझा गया (वही गा० १७४). पहले जहाँ आचारांग के द्वितीय अध्ययन के पंचम उद्देशगत आमगंध सूत्र के अध्ययन के बाद श्रमण पिण्डकल्पी होता था वहाँ अब दशवैकालिक के पंचम पिण्डैषणा नामक अध्ययन की वाचना के बाद श्रमण पिण्डकल्पी होने लगा (वही, गा० १७५).

दशवैकालिकसूत्र दिगम्बरों (सर्वार्थसिद्धि १-२०) एवं यापनीयों को भी बहुत समय तक समान रूप से मान्य रहा है, यह भी इसकी विशेषता है.

(३) **प्रादेशिक आचार्य**—जिनके नाम का तो पता नहीं किन्तु जो विभिन्न देशों में आगमों की प्रवर्त्तमान व्याख्याओं के प्रवर्तक रहे उनका परिचय तत्तद्देश-प्रदेश से सम्बद्ध रूप से मिलता है. अतएव मैंने उन्हें "प्रादेशिक आचार्य" की संज्ञा दी है.

सूत्रकृतांग की चूर्णिमें (पत्र. ९०) '**पूर्वदिग्निवासिनामाचार्याणामर्थः. प्रतीच्या-ऽपरदिग्निवासिनस्त्वेवं** कथयन्ति' इस प्रकार पौरस्त्य पाश्चात्य एवं दाक्षिणात्य आचार्यों का उल्लेख पाया जाता है.

व्यवहारसूत्र की चूर्णि में "एके आचार्या **लाटा** एवं ब्रुवतेण्हा—णविवज्जं वरगेवच्छं कीरति. अपरे आचार्या **दाक्षिणात्या** ब्रुवते—युगलं णियंसाविज्जति" इस प्रकार दाक्षिणात्य और लाटदेश में विचरने वाले आचार्यों का उल्लेख मिलता है. कल्पचूर्णि एवं निशीथचूर्णि में (भाग २ पत्र० १३४) भी लाटाचार्य का उल्लेख प्राप्त होता है. यहाँ लाटदेश भगवान् महावीर के विहार में वर्णित लाढदेश नहीं, किन्तु गुजरात में महानदी और दमण के बीच के प्रदेश को समझना चाहिए, जिसके प्रमुख नगर भृगुकच्छ (भरुच) और दर्भावती (डभोई) आदि थे. भारतीय विद्याभवन के आचार्य पद्मश्री मुनि-जिनविजयजी सम्पादित पुस्तकप्रशस्ति संग्रह पृष्ठ १०७ प्रशस्तिक्रमांक ६९ आदि में "श्री वोसरि लाटदेशमण्डले मही-दमुनयोरन्तराले समस्तव्यापारान् परिपन्थयति" इत्यादि उल्लेख भी पाये जाते हैं. जिनागमविषमपदपर्याय में पंचकल्प के विषमपदपर्याय में "**लाडपरिवाडीए लाडवाचनायामित्यर्थः**" ऐसा उल्लेख है. इसी प्रकार इसी ग्रन्थ में निशीथसूत्र के विषमपदपर्याय में "**लाडाचार्याभिप्रायात्. माथुराचार्याभिप्रायेण** परओ राईए चिन्ताऽस्माकम्" इस तरह माथुराचार्य का भी उल्लेख पाया जाता है.

इसी तरह षट्खण्डागम की धवला टीका में **उत्तरप्रतिपत्ति** व **दक्षिणप्रतिपत्ति** रूप से जो दो प्रकार की प्रतिपत्तियों का उल्लेख है वह भी मूलतः तत्तत्प्रदेश के आचार्यों को विशेष रूप से मान्य होने वाली परम्परा का ही निर्देश है (षट्-खण्डागम भा० १ भूमिका-पृ० ५७ तथा भा० ३ भूमिका पृ० १५). धवलाकार ने इनका जो अर्थ किया है वह इस प्रकार है; "एसा **दक्खिणपडिवत्ती** । दक्खिणं उज्जुवं आयरियपरम्परागदमिदि एयट्ठो ।।................एसा **उत्तरपडि-वत्ती.** उत्तरमणुज्जुवं आयरियपरम्पराए णागदमिदि एयट्ठो ।।"—षट्खण्डागमः धवला, भा० ५, पृ० ३२. इससे प्रतीत होता है कि धवलाकार के समक्ष दक्षिणप्रतिपत्ति की मान्यता परम्परागत थी जब कि उत्तरप्रतिपत्ति परम्परागत नहीं थी.

(४) **पांच सौ आदेशों के स्थापक**—स्थविर आर्य भद्रबाहुस्वामी ने आवश्यकनिर्युक्ति की १०२३ वीं गाथा में "पंच-सयादेसवयणं व" इस गाथांश से पांच सौ आदेशों का निर्देश किया है. आवश्यकचूर्णिकार श्री जिनदासमहत्तर तथा वृत्तिकार श्री हरिभद्रसूरि ने "पांच सौ आदेश" के विषय में लिखा है; "अरिहप्पवयणे **पंच आदेससताणि. ण वि अंगे ण वि उवंगे** पाढो अत्थि एवं—**मरुदेवा** अणादि-वणस्सइकाइया अणंतरं उव्वट्टित्ता सिद्धत्ति १। तहा **सयंभूरमण**-मच्छाण पउमपत्ताण य सव्वसंठाणाणि वलयसंठाणं मोत्तुं २ । **करड-उक्करडा य कुणालाए एते** जधा तधा भणामि-करड-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्करडाण निद्धमणमूले वसही, देवयाणुकंपणं, रुट्ठेसु पन्नरसदिवसवरिसणं कुणालाणगरिविणासो, ततो ततियवरिसे साराए णगरे दोण्ह वि कालकरणं, अहेसत्तमपुढविकालणरगगमणं, कुणालाणगरिविणासकालाओ तेरसमे वरिसे महावीरस्स केवलनाणुप्पत्ती ३. एयं अबद्धं." (आवश्यकचूर्णि भा० १ पृष्ठ ६०१; हरिभद्रवृत्ति पत्र. ४६५) अर्थात् जिन हकीकतों का उल्लेख किसी अंग या उपांग आदि में नहीं मिलता है किन्तु जो स्थविर आचार्यों के मुखोपमुख चली आई हैं उनका संग्रह "पांच सौ आदेश" कहलाता है. इन पांच सौ आदेशों का कोई संग्रह आज उपलब्ध नहीं है किन्तु आवश्यकचूर्णि, वृत्ति आदि इधर-उधर विप्रकीर्णरूप में कुछ-कुछ आदेशों का उल्लेख पाया जाता है (पत्र ४६५ तथा बृहत्कल्पसूत्र-वृत्ति भा० १ पत्र. ४४ टि०६).

(५) **सैद्धान्तिक, कार्मग्रन्थिकादि**—जैन आगमों की परम्परा को मानने वाले आचार्य **सैद्धान्तिक** कहलाते हैं. कर्मवाद के शास्त्रों के पारम्पर्य को माननेवाले आचार्य **कार्मग्रन्थिक** कहे जाते हैं. तर्कशास्त्र की पद्धति से आगमिक पदार्थों का निरूपण करने वाले स्थविर **तार्किक** माने गये हैं. जैन आगम आदि शास्त्रों में स्थान-स्थान पर इनका उल्लेख किया गया है.

भिन्न-भिन्न कुल, गण आदि की परम्पराओं में जो-जो व्याख्याभेद एवं सामाचारीभेद अर्थात् आचारभेद थे उनका तत्तत् कुल, गण आदि के नाम से "**नाइलकुलिच्चयाणं** आयाराओ आढवेत्ता जाव दसातो ताव णत्थि आयंबिलं, णिव्वी-तिएणं पढंति" (व्यवहारचूर्णि) इस प्रकार देखा जाता है.

(६) **भद्रबाहुस्वामी**—(वीर नि० १७० में दिवंगतः)—अन्तिम श्रुतकेवली के रूप में प्रसिद्ध ये आचार्य अपनी अन्तिम अवस्था में जब ध्यान करने के लिए नेपालदेश में गये थे तब वीर संवत् १६० में श्रुत को व्यवस्थित करने का सर्व-प्रथम प्रयत्न पाटलीपुत्र में हुआ था, ऐसी परम्परा है. ग्यारह अंगों के ज्ञाता तो संघ में विद्यमान थे किन्तु बारहवें अंग का ज्ञाता पाटलीपुत्र में कोई न था. अतएव संघ की आज्ञा शिरोधार्य कर आचार्य भद्रबाहु ने कुछ श्रमणों को बारहवें अंग की वाचना देना स्वीकार किया, किन्तु सीखने वाले श्रमण श्रीस्थूलभद्र के कुतूहल के कारण बारहवां अंग समग्रभाव से सुरक्षित न रह सका. उसके चौदह पूर्वों में से केवल दस पूर्वों की ही परम्परा स्थूलभद्र के शिष्यों को मिली. इस प्रकार आचार्य भद्रबाहु के बाद कोई श्रुतकेवली नहीं हुआ किन्तु दस पूर्वों की परम्परा चली अर्थात् बारह अंगों में से चार पूर्व जितना अंश विच्छिन्न हुआ. यहीं से उत्तरोत्तर विच्छेदन की परम्परा बढ़ी. अन्ततोगत्वा बारहवां अंग ही लुप्त हो गया, एवं अंगों में केवल ग्यारह अंग ही सुरक्षित रहे. ग्यारह अंगों में से भी जो प्रश्नव्याकरणसूत्र अभी उप-लब्ध है वह किसी नई ही वाचना का फल है क्योंकि समवायांग, नन्दी आदि आगमों में इसका जो परिचय मिलता है उससे यह भिन्न ही रूप में उपलब्ध है.

आचार्य भद्रबाहु ने दशा, कल्प और व्यवहार इन तीन ग्रन्थों की रचना की, यह सर्वसम्मत है किन्तु इन्होंने निशीथ की भी रचना की ऐसा उल्लेख केवल पंचकल्प-चूर्णिकारने ही किया है. फिर भी आज निशीथसूत्रकी खंभात के श्रीशांति-नाथ ज्ञान-भण्डार की वि० सं० १४३० में लिखी हुई प्रति में तथा वैसी अन्य प्रतियों में इसके प्रणेता का नाम विशा-खगणि महत्तर बताया गया है. वह उल्लेख इस प्रकार है :

दंसण-चरित्तजुत्तो गुत्तो गोत्तीसु सज्जणहिएसी ।
णामेण **विसाहगणी महतरओ** णाणमंजूसा ।।१।।

कित्ती-कंतिपिणद्धो जसपत्तपडहो (?) तिसागरणिरुद्धो ।
पुणरुत्तं भमति महिं ससिव्व गगणंगणं तस्स ।।२।।

तस्स लिहियं जिसीहं धम्मधुराधरणपवरपुज्जस्स ।
आरोगधारणिज्जं सिस्स-पसिस्सोवभोज्जं च ।।३।।

दिगम्बर परम्परा में धवला के अनुसार १४ अंगबाह्य अर्थाधिकार हैं. इनमें कल्प और व्यवहार को एक माना गया है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा निशीथ को अलग स्थान दिया गया है. इससे यह तो स्पष्ट होता है कि कल्प, व्यवहार और निशीथ की अंगबाह्य अर्थाधिकार की परम्परा चली आती थी.

भद्रबाहुकृत कल्प-व्यवहार जिस रूप में आज श्वेताम्बरपरम्परा में मान्य हैं उसी रूप में दिगम्बर परम्परा में उल्लिखित अंगबाह्य कल्पादि मान्य थे या उससे भिन्न-यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है, किन्तु उनका जो विषय बताया गया है वही विषय उपलब्ध भद्रबाहुकृत कल्पादि में विद्यमान है. दोनों परम्पराओं के मत से स्थविरकृत रचानाएं अंगबाह्य मानी जाती रही हैं. भद्रबाहु तक श्वेताम्बर दिगम्बर का मतभेद स्पष्ट नहीं था. इन तथ्यों के आधार पर संभावना की जा सकती है कि कल्प-व्यवहार के जिन अर्थाधिकारों का उल्लेख धवला में है उन अर्थाधिकारों का सूत्रात्मक व्यवस्थित संकलन सर्वप्रथम आचार्य भद्रबाहु ने किया और वह संघ को मान्य हुआ. इस दृष्टि से धवला में उल्लिखित कल्प-व्यवहार और निशीथ तथा उपलब्ध कल्प-व्यवहार और निशीथ में भेद मानने का कोई कारण नहीं है. फिर भी दोनों की एकता का निश्चयपूर्वक विधान करना कठिन है.

आचार्य भद्रबाहु की जो विशेषता है वह यह है कि इन्होंने अपने उक्त ग्रंथों में उत्सर्ग और अपवादों की व्यवस्था की है. इतना ही नहीं किन्तु व्यवहारसूत्र में तो अपराधों के दण्ड की भी व्यवस्था की गई है. ऐसी दण्डव्यवस्था एवं आचार्य आदि पदवी की योग्यता आदि के निर्णय सर्वप्रथम इन्हीं के ग्रंथों में मिलते हैं. संघ ने ग्रंथों को प्रमाणभूत माना यह आचार्य भद्रबाहु की महत्ता का सूचक है. श्रमणों के आचार के विषय में दशवैकालिक के बाद दशा-कल्प आदि ग्रंथ दूसरा सीमास्तम्भ है. साथ ही एक बार अपवाद की शुरूआत होने पर अन्य भाष्यकारों व चूर्णिकारों ने भी उत्तरोत्तर अपवादों में वृद्धि की. संभव है कि इसी अपवाद-मार्ग को लेकर संघ में मतभेद की जड़ दृढ होती गई और आगे चल कर श्वेताम्बर-दिगम्बर का सम्प्रदाय-भेद भी दृढ हुआ.

बृहत्कल्प-भाष्य भा० ६ की प्रस्तावना में मैंने अनेक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि उपलब्ध निर्युक्तियों के कर्त्ता श्रुतकेवली भद्रबाहु नहीं है किन्तु ज्योतिर्विद् वराहमिहिर के भ्राता द्वितीय भद्रबाहु हैं जो विक्रम की छठी शताब्दी में हुए हैं. अपने इस कथन का स्पष्टीकरण करना यहाँ उचित है. जब मैं यह कहता हूं कि उपलब्ध निर्युक्तियाँ द्वितीय भद्रबाहु की हैं, श्रुतकेवली भद्रबाहु की नहीं तब इसका तात्पर्य यह नहीं कि श्रुतकेवली भद्रबाहु ने निर्युक्तियों की रचना की ही नहीं. मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि जिस अन्तिम संकलन के रूप में आज हमारे समक्ष निर्युतियाँ उपलब्ध हैं वे श्रुतकेवली भद्रबाहु की नहीं है. इसका अर्थ यह नहीं कि द्वितीय भद्रबाहु के पूर्व कोई निर्युक्तियाँ थीं ही नहीं. निर्युक्ति के रूप में आगमव्याख्या की पद्धति बहुत पुरानी है. इसका पता हमें अनुयोगद्वार से लगता है. वहां स्पष्ट कहा गया कि अनुगम दो प्रकार का होता है : सुत्ताणुगम और निज्जुत्तिअणुगम. इतना ही नहीं किन्तु निर्युक्तिरूप से प्रसिद्ध गाथाएं भी अनुयोगद्वार में दी गई हैं. पाक्षिकसूत्र में भी "सनिज्जुत्तिए" ऐसा पाठ मिलता है. द्वितीय भद्रबाहु के पहले भी गोविन्द वाचक की निर्युक्ति का उल्लेख निशीथभाष्य व चूर्णि में मिलता है. इतना ही नहीं किन्तु वैदिकवाङ्मय में भी निरुक्त अति प्राचीन है. अतएव यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जैनागम की व्याख्या का निर्युक्ति नामक प्रकार प्राचीन है. यह संभव नहीं कि विक्रम की छठी शताब्दी तक आगमों की कोई व्याख्या निर्युक्ति के रूप में हुई ही न हो. दिगम्बरमान्य मूलाचार में भी आवश्यक-निर्युक्तिगत कई गाथाएं हैं. इससे भी पता चलता है कि श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्प्रदाय का स्पष्ट भेद होने के पूर्व भी निर्युक्ति की परम्परा थी. ऐसी स्थिति में श्रुतकेवली भद्रबाहु ने निर्युक्तियों की रचना की है—इस परम्परा को निर्मूल मानने का कोई कारण नहीं है. अतः यही मानना उचित है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु ने भी निर्युक्तियों की रचना की थी और बाद में गोविन्द वाचक जैसे अन्य आचार्यों ने भी. उसी प्रकार क्रमशः बढ़ते-बढ़ते निर्युक्तियों का जो अन्तिम रूप हुआ वह द्वितीय भद्रबाहु का है. अर्थात् द्वितीय भद्रबाहु ने अपने समय तक की उपलब्ध निर्युक्ति-गाथाओं का अपनी निर्युक्तियों में संग्रह किया हो, साथ ही अपनी ओर से भी कुछ नई गाथाएं बना कर जोड़ दीं. यही रूप आज हमारे सामने निर्युक्ति के नाम से उपलब्ध है. इस तरह क्रमशः निर्युक्ति-गाथाएं बढ़ती गईं. इसका एक प्रबल प्रमाण यह है कि दशवैकालिक की दोनों चूर्णियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में प्रथम अध्ययन की केवल ५७ निर्युक्ति गाथाएं हैं जब कि हरिभद्र की वृत्ति में १५७ हैं. इससे यह भी सिद्ध होता है कि द्वितीय भद्रबाहु ने निर्युक्तियों का अन्तिम संग्रह किया. उसके बाद भी उसमें वृद्धि होती रही है. इस स्पष्टीकरण के प्रकाश में यदि हम श्रुतकेवली भद्रबाहु को भी निर्युक्तिकार मानें तो अनुचित न होगा.

(७) **श्यामाचार्य :** (वीर नि० ३७६ में दिवंगत:)—इन्होंने प्रज्ञापना उपांगसूत्र की रचना की है. प्रज्ञापनासूत्र के "वायगवरवंसाओ तेवीसइमेण धीरपुरिसेण" इस प्रारंभिक उल्लेख के अनुसार ये वाचकवंश के २३ वें पुरुष थे.

(८,९,१०) आर्य सुहस्ति (वी. नि. २९१) आर्यसमुद्र : (वी. नि. ४७०) और आर्य मंगु (वी. नि. ४७०)—इन तीन स्थविरों की कोई खास कृति हमारे सामने नहीं है, किन्तु जैन आगमों में, खासकर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि में नाम-स्थापना आदि निक्षेप द्वारा पदार्थमात्र का जो समग्रभाव से प्रज्ञापन किया जाता है इसमें जो द्रव्य-निक्षेप आता है इस विषय में इन तीन स्थविरों की मान्यता का उल्लेख **कल्पचूर्णि में** किया गया है :—

"किंच **आदेसा** जहा—**अज्जमंगू** तिविहं संखं इच्छति, एगभवियं बद्धाउयं अभिमुहनाम-गोत्तं च. **अज्जसमुद्दा** दुविहं, बद्धाउयं अभिमुहनाम-गोत्तं च. **अज्जसुहत्थी** एगं अभिमुहणाम-गोयं इच्छति" ये तीन महापुरुष जैन आगमों के श्रेष्ठ ज्ञाता एवं माननीय स्थविर थे.

(११) पादलिप्ताचार्य : (वीर नि. ४६७ के आसपास)—इन आचार्य ने तरंगवई नामक प्राकृत-देशी भाषामयी अति रसपूर्ण आख्यायिका की रचना की है. यह आख्यायिका आज प्राप्त नहीं है किन्तु हारिजगच्छीय आचार्य यश (?) रचित प्राकृत गाथाबद्ध इसका संक्षेप प्राप्त है. डा० अर्न्स्ट लॉयमान ने इस संक्षेप में समाविष्ट कथांश को पढ़कर इसका जर्मन में अनुवाद किया है. यही इस आख्यायिका की मधुरता की प्रतीति है. दाक्षिण्यक उद्योतनसूरि, महाकवि धनपाल आदि ने इस रचना की मार्मिक स्तुति की है. इन्हीं आचार्य ने ज्योतिष्करंडकशास्त्र की प्राकृत टिप्पनकरूप छोटी सी वृत्ति लिखी है. इसका उल्लेख आचार्य मलयगिरि ने अपनी सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्ति में (पत्र ७२ व १००) और ज्योतिष्करंडक-वृत्ति में (पत्र ५२, १२१,२३७) किया है. यद्यपि आचार्य मलयगिरि ने ज्योतिष्करंडक-वृत्ति को पादलिप्ताचार्यनिर्मित बतलाया है किन्तु आज जैसलमेर और खंभात में पंद्रहवीं शती में लिखी गई मूल और वृत्ति सहित मूल की जो हस्तप्रतियाँ प्राप्त हैं उन्हें देखते हुए आचार्य मलयगिरि के कथन को कहाँ तक माना जाय, यह मैं तज्ज्ञ विद्वानों पर छोड़ देता हूँ. उपर्युक्त मूलग्रन्थ एवं मूलग्रन्थसहित वृत्ति के अंत में जो उल्लेख हैं वे क्रमशः इस प्रकार हैं :—

कालण्णाणसमासो पुव्वायरिएहिं वण्णिओ एसो ।
दिणकरपण्णत्तीतो सिस्सजणहिओ सुहोपायो ।।
पुव्वायरियकयाणं करणाणं जोतिसम्मि समयम्मि ।
पालित्तकेण इणमो रइया गाहाहिं परिवाडी ।। —ज्योतिष्करण्डक प्रान्त भाग.

कालण्णाणसमासो पुव्वायरिएहिं नीणिओ एसो ।
दिणकरपण्णत्तीतो सिस्सजणहिओ पिओ ......।।
पुव्वायरियकयाय नीतिसमसमएणं ।
पालित्तएण इणमो रइया गाहाहिं परिवाडी ।।

।। **णमो अरहंताण** ।।

कालण्णाणस्सिणमो **वित्ती** णामेण **चंद** [....] त्ति ।
सिवनंदिवायगेहिं तु रोयिगा जिणदेवगतिहेतूणं (?) ।। ।। ग्रं० १५८० ।।
—ज्योतिष्करंडकवृत्ति प्रान्त भाग.

इन दोनों उल्लेखों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि—मूल ज्योतिष्करंडकप्रकीर्णक के प्रणेता पादलिप्ताचार्य हैं और उसकी वृत्ति, जिसका नाम 'चन्द्र' है, शिवनन्दी वाचक की रचना है. आचार्य मलयगिरि ने तो सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्ति एवं ज्योतिष्करंडक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्ति में इस वृत्ति के प्रणेता पादलिप्त को कहा है. संभव है, आचार्य मलयगिरि के पास कोई अलग कुल की प्रतियाँ आई हों जिनमें मूलसूत्र और वृत्ति का आदि-अन्तिम भाग छूट गया हो. जैसलमेर के ताडपत्रीय संग्रह की ज्योतिष्करण्डक मूलसूत्र की प्रति में इसका आदि और अन्त का भाग नहीं है. आचार्य मलयगिरि को ऐसे ही कुल की कोई खंडित प्रति मिली होगी जिस से अनुसन्धान कर के उन्होंने अपनी वृत्ति की रचना की होगी. इन आचार्य ने 'शत्रुंजयकल्प' की भी रचना की है. नागार्जुनयोगी इनका उपासक था. इसने इन्हीं आचार्य के नाम से शत्रुंजयमहातीर्थ की तलहटी में पादलिप्तनगर [पालीताणा] वसाया था, ऐसी अनुश्रुति जैनग्रन्थों में पाई जाती है.

(११) **आर्यरक्षित (वीर नि० ५८४ में दिवंगत:)**—स्थविर आर्य वज्रस्वामी इनके विद्यागुरु थे. ये जैन आगमों के अनुयोग का पृथक्त्व-भेद करनेवाले, नयों द्वारा होने वाली व्याख्या के आग्रह को शिथिल करनेवाले और अनुयोगद्वारसूत्र के प्रणेता थे. प्राचीन व्याख्यान-पद्धति को इन्होंने अनुयोगद्वारसूत्र की रचना द्वारा शास्त्रबद्ध कर दिया है. ये श्री दुर्बलिका पुष्यमित्र, विन्ध्य आदि के दीक्षागुरु एवं शिक्षागुरु थे.

यहाँ पर प्रसंगवश अनुयोग का पृथक्त्व क्या है, इसका निर्देश करना उचित होगा.

अनुयोगका पृथक्त्व

कहा जाता है कि प्राचीन युग में जैन गीतार्थ स्थविर जैन आगमों के प्रत्येक छोटे-बड़े सूत्रों की वाचना शिष्यों को चार अनुयोगों के मिश्रण से दिया करते थे. उनका इस वाचना या व्याख्या का क्या ढंग था, यह कहना कठिन है फिर भी अनुमान होता है कि उस व्याख्या में—(१) चरणकरणानुयोग—जीवन के विशुद्ध आचार, (२) धर्मकथानुयोग—विशुद्ध आचार का पालन करनेवालों की जीवन-कथा, (३) गणितानुयोग—विशुद्ध आचार का पालन करनेवालों के अनेक भूगोल-खगोल के स्थान और (४) द्रव्यानुयोग—विशुद्ध जीवन जीने वालों की तात्त्विक जीवन-चिन्ता क्या व किस प्रकार की हो, इसका निरूपण रहता होगा और वे प्रत्येकसूत्र की नया, प्रमाण व भंगजाल से व्याख्या कर उसके हार्दको कई प्रकार से विस्तृत कर बताते होंगे. समय के प्रभाव से बुद्धिबल व स्मरणशक्ति की हानि होनेपर क्रमशः इस प्रकारके व्याख्यान में न्यूनता आती ही गई जिसका साक्षात्कार स्थविर आर्य कालक द्वारा अपने प्रशिष्य सागरचन्द्र को दिये गये धूलिपुंज के उदाहरणसे हो जाता है. जैसे धूलिपुंज को एक जगह रखा जाय, फिर उसको उठाकर दूसरी जगह रखा जाय, इस प्रकार उसी धूलिपुंज को उठा-उठाकर दूसरी-दूसरी जगह पर रखा जाय. ऐसा करने पर शुरू का बड़ा धूलिपुंज अन्त में चुटकी में भी न आवे, ऐसा हो जाता है. इसी प्रकार जैन आगमोंका अनुयोग अर्थात् व्याख्यान कम होते-होते परम्परासे बहुत संक्षिप्त रह गया. ऐसी दशामें बुद्धिबल एवं स्मरणशक्ति की हानि के कारण जब चतुरनुयोग का व्याख्यान दुर्घट प्रतीत हुआ तब स्थविर आर्यरक्षितने चतुरनुयोगके व्याख्यानके आग्रहको शिथिल कर दिया. इतना ही नहीं, उन्होंने प्रत्येक सूत्र की जो नयों के आधार से तार्किक विचारणा आवश्यक समझी जाती थी उसे भी वैकल्पिक कर दिया. श्रीआर्यरक्षित के शिष्य प्रशिष्यों का समुदाय संख्यामें बडा था. उनमें जो विद्वान् शिष्य थे उन सबमें दुर्बलिका पुष्यमित्र अधिक बुद्धिमान् एवं स्मृतिशाली थे. वे कारणवशात् कुछ दिन तक स्वाध्याय न करनेके कारण ११ अंग, पूर्वशास्त्र आदिको और उनकी नयगर्भित चतुरनुयोगात्मक व्याख्या को विस्मृत करने लगे. इस निमित्त को पाकर स्थविर आर्यरक्षित ने सोचा कि ऐसा बुद्धिस्मृतिसम्पन्न भी यदि इस अनुयोगको भूल जाता है तो दूसरेकी तो बात ही क्या ? ऐसा सोचकर उन्होंने चतुरनुयोग के स्थान पर सूत्रों की व्याख्या में उनके मूल विषय को ध्यान में रखकर किसी एक अनुयोग को ही प्राधान्य दिया और नयों द्वारा व्याख्या करना भी आवश्यक नहीं समझा. वक्ता व श्रोता की अनुकूलता के अनुसार ही नयों द्वारा व्याख्या की जाय, ऐसी पद्धति का प्रचलन किया. तदनुसार विद्यमान आगमों के सूत्रों को उन्होंने चार अनुयोगों में विभक्त कर दिया जिससे तत्-तत् सूत्र की व्याख्या केवल एक ही अनुयोग का आश्रय लेकर हो. जैसे आचार, दशवैकालिक आदि सूत्रों की व्याख्या में केवल चरणकरणानुयोग का ही आश्रय लिया जाय, शेष का नहीं. इसी प्रकार सूत्रों को कालिक-उत्कालिक विभाग में भी बांट दिया.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१३) कालिकाचार्य : (वीर नि० ६०५ के आसपास)—पंचकल्पमहाभाष्य के उल्लेखानुसार ये आचार्य शालिवाहन के समकालीन थे. इन्होंने जैनपरम्परागत कथाओं के संग्रहरूप प्रथमानुयोग नामक कथासंग्रह का पुनरुद्धार किया था. इसके अतिरिक्त गंडिकानुयोग और ज्योतिषशास्त्रविषयक लोकानुयोग नामक शास्त्रों का भी निर्माण किया था. जैन आगमग्रंथों की संग्रहणियों की रचना इन्हीं की है. जैन आगमों के प्रत्येक छोटे-छोटे विभाग में जिन-जिन विषयों का समावेश होता था उनका बीजरूप संग्रह इन संग्रहणी-गाथाओं में किया गया है. एक प्रकार से इसे जैन आगमों का विषयानुक्रम ही समझना चाहिए. आज यह संग्रह व्यवस्थितरूप में देखने में नहीं आता है, तथापि संभव है कि भगवती, प्रज्ञापना, आवश्यक आदि सूत्रों की टीकाओं में टीकाकार आचार्यों ने प्रत्येक शतक, अध्ययन, प्रतिपत्ति, पद आदि के प्रारम्भ में जो संग्रहणी-गाथाएँ दी हैं वे यही संग्रहणी-गाथाएँ हों.

(१४) गुणधर (वीर नि० ६१४-६८३ के बीच)—दिगम्बर आम्नाय में आगमरूप से मान्य कसायपाहुड के कर्ता गुणधर आचार्य हैं. उनके समय का निश्चय यथार्थरूप में करना कठिन है. पं० हीरालालजी का अनुमान है कि ये आचार्य धरसेन से भी पहले हुए हैं,

(१५) आचार्य धरसेन, पुष्पदन्त व भूतबलि—(वीर नि० ६१४-६८३ के बीच ?) दिगम्बर आम्नाय में षट्खंडागम के नाम से जो सिद्धान्तग्रन्थ मान्य हैं उसका श्रेय इन तीनों आचार्यों को है. जिस प्रकार भद्रबाहु ने चौदहपूर्व का ज्ञान स्थूलभद्र को दिया उसी प्रकार आचार्य धरसेन ने पुष्पदन्त और भूतबलि को श्रुत का लोप न हो, इस दृष्टि से सिद्धान्त पढ़ाया जिसके आधार पर दोनों ने षट्खण्डागम की रचना की. इनका समय वीरनिर्वाण ६१४ व ६८३ के बीच है, ऐसी संभावना की गई है.

(१६, १७) आर्य मंक्षु और नागहस्ति—कषायपाहुड की परम्परा को सुरक्षित रखने का विशेष कार्य इन आचार्यों ने किया और इन्हीं के पास अध्ययन करके आचार्य यतिवृषभ ने कसायपाहुड की चूर्णि की रचना की थी. इन आचार्यों को नंदीसूत्र की पट्टावली में भी स्थान मिला है.

नंदीसूत्रकार ने आर्य मंगु और नागहस्ति का वर्णन इस प्रकार किया है :

भणगं करगं झरगं पभावगं णाण-दंसण-गुणाणं ।
वंदामि **अज्जमंगुं** सुयसागरपारगं धीरं ।।२८।।
णाणम्मि दंसणम्मि य तव-विणए णिच्चकालमुज्जुत्तं ।
अज्जाणंदिलखमणं सिरसा वंदे पसण्णमणं ।।२९।।
वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो **अज्जणागहत्थीणं** ।
वागरण-करण-भंगिय-**कम्मप्पगडीपहाणाणं** ।।३०।।

नंदीसूत्र के आर्य मंगु ही आर्य मंक्षु हैं, ऐसा निर्णय किया गया है. इससे विद्वानों का ध्यान इस ओर जाना आवश्यक है कि आज भले ही कुछ ग्रंथों को हम केवल श्वेताम्बरों के ही माने और कुछ को केवल दिगम्बरों के किन्तु वस्तुतः एक-काल ऐसा था जब शास्त्रकार और शास्त्र का ऐसा साम्प्रदायिक विभाजन नहीं हुआ था.

आर्य मंक्षु के विषय में एक खास बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि उनके कुछ विशेष मन्तव्यों के विषय में जयधवलाकार का कहना है कि ये परम्परा के अनुकूल नहीं (षट्खंडागम भा० ३ भूमिका पृष्ठ १५).

(१८) आचार्य शिवशर्म : (वीर नि० ८२५ से पूर्व)—जैनधर्म की अनेक विशेषताओं में एक विशेषता है उसके कर्म-सिद्धान्त की. जिस प्रकार षट्खण्डागम और कसायपाहुड विशेषतः कर्मसिद्धान्त के ही निरूपक हैं उसी प्रकार शिवशर्म की कम्मपयडी और शतक कर्मसिद्धान्त के ही निरूपक प्राचीन ग्रंथ हैं. इनका समय भाष्य-चूर्णिकाल के पहले का अवश्य है.

(१९, २०) स्कन्दिलाचार्य व नागार्जुनाचार्य (वीर नि० ८२७ से ८४०)—ये स्थविर क्रमशः माथुरी या स्कान्दिली और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वालभी या नागार्जुनी वाचना के प्रवर्तक थे. दोनों ही समकालीन स्थविर आचार्य थे. इनके युग में भयंकर दुर्भिक्ष उपस्थित होने के कारण जैन श्रमणों को इधर-उधर विप्रकीर्ण छोटे-छोटे समूहों में रहना पड़ा. श्रुतधर स्थविरों की विप्रकृष्टता एवं भिक्षा की दुर्लभता के कारण जैनश्रमणों का अध्ययन-स्वाध्यायादि भी कम हो गया. अनेक श्रुतधर स्थविरों का इस दुर्भिक्ष में देहावसान हो जाने के कारण जैनआगमों का बहुत अंश नष्ट-भ्रष्ट, छिन्न-भिन्न एवं अस्त-व्यस्त हो गया. दुर्भिक्ष के अन्त में ये दोनों स्थविर, जो कि मुख्य रूप से श्रुतधर थे, बच रहे थे किन्तु एक-दूसरे से बहुत दूर थे. आर्य स्कन्दिल मथुरा के आस-पास थे और आर्य नागार्जुन सौराष्ट्र में. दुर्भिक्ष के अन्त में इन दोनों स्थविरों ने वी० सं० ८२७ से ८४० के बीच किसी वर्ष में क्रमशः मथुरा व वलभी में संघसमवाय एकत्र करके जैनआगमों को जिस रूप में याद था उस रूप में ग्रन्थरूप से लिख लिया. दोनों स्थविर वृद्ध होने के कारण परस्पर मिल न सके. इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों के शिष्य-प्रशिष्यादि अपनी-अपनी परम्परा के आगमों को अपनाते रहे और उनका अध्ययन करते रहे. यह स्थिति लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक रही. इस समय तक कोई ऐसा प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति नहीं हुआ जो आगमों के इस पाठभेद का समन्वय कर पाता. इसी कारण आगमों का व्यवस्थित लेखन आदि भी नहीं हो सका. जो कुछ भी हो आज जो जैनागम विद्यमान हैं वे इन दोनों स्थविरों की देन हैं.

(२१) स्थविर आर्य गोविंद (वीर नि० ८५० से पूर्व)—ये पहले बौद्ध आचार्य थे और बाद में इन्होंने जैनधर्म स्वीकार किया था. इन्होंने गोविन्दनिर्युक्ति की रचना की थी जिसमें पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि की सजीवता का निरूपण किया गया है. यह निर्युक्ति किस आगम को लक्ष्य करके रची गई, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता. फिर भी अनुमान होता है कि यह आचारांगसूत्र के प्रथम अध्ययन शस्त्रपरिज्ञा अथवा दशवैकालिकसूत्र के चतुर्थ अध्ययन छज्जीवणिया को लक्ष्य करके रची गई होगी. आज इस निर्युक्ति का कहीं पर भी पता नहीं मिलता है. आचार्य गोविंद के नाम का उल्लेख दशवैकालिकसूत्र के चतुर्थ अध्ययन की वृत्ति में आचार्य हरिभद्र ने भाष्यगाथा के नाम से जो गाथाएं उद्धृत कर व्याख्या की है उसमें "गोविंदवायगो विय जह परपक्खं नियत्तेइ" (पत्र० ५३,१ गा० ८२) इस प्रकार उल्लेख आता है. आचार्य हरिभद्र 'गोविंदवायग' इस प्राकृत नाम का संस्कृत में परिवर्तन 'गोपेन्द्र वाचक' नाम से करते हैं. आचार्य श्री हरिभद्र सूरि ने अपने योगबिन्दु ग्रन्थ में गोपेन्द्र के नाम से जो अवतरण दिये हैं, वे संभव है कि इन्हीं गोपेन्द्र वाचक के हों. जैनआगमों के भाष्य में इन गोविन्द स्थविर का उल्लेख 'ज्ञानस्तेन' के रूप में किया गया है. इसका कारण यह है कि ये पहले जैनाचार्यों की युक्ति-प्रयुक्तियों को जानकर उनका खण्डन करने की दृष्टि से ही दीक्षित हुए थे, किन्तु बाद में उनके हृदय को जैनाचार्यों की युक्ति-प्रयुक्तियों ने जीत लिया जिससे वे फिर से दीक्षित हुए और महान् अनुयोगधर हुए. नंदीसूत्र की प्रारंभिक स्थविरावली में इनका परिचय गाथा के द्वारा इस प्रकार दिया है :—

गोविंदाणं पि णमो अणुओगे विउल धारणिंदाणं ।
निच्चं खंति-दयाणं परूवणादुल्लभिंदाणं ॥

(२२,२३) देवर्धिगणि व गन्धर्व वादिवेताल शांतिसूरि (वीर नि० ९९३)—देवर्धिगणि क्षमाश्रमण माथुरी वाचनानुयायी प्रतिभासम्पन्न समर्थ आचार्य थे. इन्हीं की अध्यक्षता में वलभी में माथुरी एवं नागार्जुनी वाचनाओं के वाचनाभेदों का समन्वय करके जैनआगम व्यवस्थित किये गये और लिखे भी गये. गन्धर्व वादिवेताल शान्तिसूरि वालभी वाचनानुयायी मान्य स्थविर थे. इनके विषय में —

वालब्भसंघकज्जे उज्जमियं जुगपहाणतुल्लेहिं ।
गंधव्ववाइवेयालसंतिसूरीहिं वलहीए ॥

इस प्रकार का प्राचीन उल्लेख भी पाया जाता है. इस गाथा में 'वलभी में वालभ्यसंघ के कार्य के लिए गन्धर्व वादिवेताल शान्तिसूरि ने प्रयत्न किया था' ऐसा जो उल्लेख है वह वालभ्यसंघ कार्य वालभी-वाचना को लक्ष्य करके ही अधिक संभवित है. अन्यथा 'वालभ्यसंघकज्जे' ऐसा उल्लेख न होकर 'संघकज्जे' इतना ही उल्लेख काफी होता. इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि श्रीदेवर्धिगणि क्षमाश्रमण को माथुरी-वालभी वाचनाओं को व्यवस्थापित करने में इनका प्रमुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहाय्य रहा होगा. दिगंबराचार्य देवसेनकृत दर्शनसारनामक ग्रन्थ में श्वेताम्बरों की उत्पत्ति के वर्णनप्रसंग में—

छत्तीसे वरिससए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।
सोरट्ठे उप्पण्णो सेवडसंघो हु वलहीए ।।५२।।
एक्क पुण संतिणामो संपत्तो वलहिणामणयरीए ।
बहुसीससंपउत्तो विसए सोरट्ठए रम्मे ।।५६।।

इस प्रकार का उल्लेख है. यद्यपि इस उल्लेख में दिया हुआ संवत् मिलता नहीं है तथापि उपर्युक्त 'वालब्भसंघकज्जे' गाथा में निर्दिष्ट वालभ्यसंघकार्य, शांतिसूरि, वलभि आदि उल्लेख के साथ तुलना करने के लिये दर्शनसार का यह उल्लेख जरूर उपयुक्त है.

देवर्धिगणि जो स्वयं माथुरसंघ के युगप्रधान थे, उनकी अध्यक्षता में वलभीनगर में एकत्रित संघसमवाय में दोनों वाचनाओं के श्रुतधर स्थविरादि विद्यमान थे. इस संघसमवाय में सर्वसम्मति से माथुरी वाचना को प्रमुख स्थान दिया गया होगा. इसका कारण यह हो सकता है कि माथुरी-वाचना के जैनआगमों की व्यवस्थितता एवं परिमाणाधिकता थी. इसमें ज्योतिष्करंडक जैसे ग्रन्थों को भी स्थान दिया गया जो केवल वालभी-वाचना में ही थे. इतना ही नहीं अपितु माथुरी-वाचना से भिन्न एवं अतिरिक्त जो सूत्रपाठ एवं व्याख्यान्तर थे उन सबका उल्लेख नागार्जुनाचार्य के नाम से तत्तत् स्थान पर किया भी गया. आचारांग आदि की चूर्णिओं में ऐसे उल्लेख पाये जाते हैं. समझ में नहीं आता कि जिस समय जैनआगमों को पुस्तकारूढ किया गया होगा उस समय इन वाचनान्तरों का संग्रह किस ढंग से किया होगा ?. जैनआगम की कोई ऐसी हस्तप्रति मौजूद नहीं है जिसमें इन वाचनाभेदों का संग्रह या उल्लेख हो. आज हमारे सामने इस वाचनाभेद को जानने का साधन प्राचीन चूर्णिग्रन्थों के अलावा अन्य एक भी ग्रन्थ नहीं है. चूर्णियाँ भी सब आगमों की नहीं किन्तु केवल आवश्यक, नन्दी, अनुयोगद्वार, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, भगवती, जीवाभिगम, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, निशीथ, कल्प, पंचकल्प, व्यवहार एवं दशाश्रुतस्कन्ध की ही मिलती हैं.

ऊपर जिन आगमों की चूर्णियों के नाम दिये गये हैं उनमें से नागार्जुनीय-वाचनाभेद का उल्लेख केवल आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन व दशवैकालिक की चूर्णियों में ही मिलता है. अन्य आगमों में नागार्जुनीय वाचना की अपेक्षा न्यूनाधिक्य या व्याख्याभेद क्या था, इसका आज कोई पता नहीं लगता. बहुत संभव है, ये वाचनाभेद चूर्णि-वृत्ति आदि व्याख्याओं के निर्माण के बाद में सिर्फ पाठभेद के रूप में परिणत हो गये हों. यही कारण है कि चूर्णिकार और वृत्तिकारों की व्याख्या में पाठों का कभी-कभी बहुत अन्तर दिखाई देता है.

(१) दशवैकालिकसूत्र को अनामकर्तृक मुद्रितचूर्णि के पृष्ठ. २०४ में "नागज्जुणिया तु एवं पढंति—एवं तु गुणप्पेही अगुणाऽणविवज्जए" इस प्रकार एक ही नागार्जुनीय वाचना का उल्लेख पाया गया है. यह उल्लेख पाठभेदमूलक नहीं अपितु व्याख्याभेदमूलक है. माथुरी वाचना वाले "अगुणाण विवज्जए—अगुणानां विवर्जकः" ऐसी सीधी व्याख्या करते हैं, जबकि नागार्जुनीय वाचना वाले "अगुणाऽणविवज्जए—अगुणरिणं अकुव्वंतो" अर्थात् 'अगुणरूप ऋण नहीं करते' ऐसी व्याख्या करते हैं. इस चूर्णि में नागार्जुनीय नाम का यह एक ही उल्लेख देखने में आया है. इसी दशवैकालिकसूत्र की स्थविर अगस्त्यसिंहकृत एवं अन्य प्राचीन चूर्णि पाई गई है जो अभी प्राकृत-टेक्स्ट-सोसाइटी की ओर से छप रही है. इसमें (पृ० १३६) इस स्थान पर उपर्युक्त वाचनाभेद का उल्लेख किया है किन्तु नागार्जुनीय नाम का उल्लेख नहीं है. इससे भी यही प्रतीत होता है कि नागार्जुनीय पाठभेदादि केवल पाठान्तर व मतान्तर के रूप में ही रह गये हैं. प्राचीन वृत्तिकार आचार्य हरिभद्र भी अपनी वृत्ति में कहीं पर भी नागार्जुनीय वाचना का नामोल्लेख करते नहीं हैं.

(२) आचारांगसूत्र की चूर्णि में नागार्जुनीयवाचनाभेद का उल्लेख पंद्रह जगह पाया जाता है—

१.	भदन्त नागार्जुनीयास्तु पढंति	पृ०	६२	वृत्तिपत्र	११८
२.	णागज्जुणिया पढंति	,,	६४		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३.	भदंतणागज्जुणिया तु पढंति	पृ०	११३			
४.	भदंतणागज्जुणिया	,,	१२०	वृत्तिपत्र	१६६	पृ० २
५.	भदंतणागज्जुणिया पढंति	,,	१३६	,,	१८३	पृ० २
६.	एत्थ सक्खी भदन्तनागार्जुना:	,,	१५७	,,	१६८	पृ० २
७.	नागार्जुनीयास्तु	,,	१६१	,,	२०१	पृ० १
८.	णागज्जुणीया	,,	२०७	,,	२३६	पृ० १
९.	भदन्त णागज्जुणा तु	,,	२१६	,,	२४५	पृ० १
१०.	णागज्जुणिया उ	,,	२१६			
११.	णागज्जुणा	,,	२३२	वृत्तिपत्र	२५३	पृ० २
१२.	णागज्जुणा तु	,,	२३७	,,	२५६	पृ० १
१३.	णागज्जुणा	,,	२८७			
१४.	णागज्जुणा तु पढंति	,,	३०२	वृत्तिपत्र	३०३	पृ० १
१५.	भदन्तनागार्जुनीया तु	,,	३१३			

यहां पर आचारांगचूर्णि और शीलांकाचार्य रचित वृत्ति के जो पृष्ठ-पत्रांक आदि दिये गये हैं वे आगमोद्धारक पूज्य आचार्य श्री सागरानन्दसूरि सम्पादित आवृत्ति के हैं.

उपर्युक्त पंद्रह उल्लेखों में से पांच उल्लेख शीलांकीय वृत्ति में नहीं हैं. बाकी के दस उल्लेख शीलांकाचार्य ने दिये हैं. वे सभी उल्लेख आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध की चूर्णि-वृत्ति में ही हैं. द्वितीय श्रुतस्कन्ध की चूर्णि-वृत्ति में नागार्जुनीय-वाचना का कोई उल्लेख नहीं है.

यहां आचारांग-चूर्णि में से नागार्जुनीयवाचना के जो पंद्रह उल्लेख उद्धृत किये गये हैं उनमें सात जगह अति पूज्यतासूचक 'भदन्त' विशेषण का प्रयोग किया गया है जो अन्य किसी चूर्णि-वृत्ति आदि में नहीं है. इससे अनुमान होता है कि इस चूर्णि के प्रणेता, जिनके नाम का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता, कम-से-कम नागार्जुनीय परंपरा के प्रति आदर रखने वाले थे.

(३) सूत्रकृतांग की चूर्णि में नागार्जुनीय वाचना के जो उल्लेख मिलते हैं उन सभी स्थानों पर 'नागार्जुनीयास्तु' ऐसा लिखकर ही नागार्जुनीय वाचनाभेद का उल्लेख किया गया है जो प्रथम श्रुतस्कन्ध में चार जगह व दूसरे श्रुतस्कन्ध में नौ जगह पाया गया है. आचार्य शीलांक ने अपनी वृत्ति में 'नागार्जुनीयास्तु पठन्ति' लिखकर नागार्जुनीय-वाचना का उल्लेख चार जगह किया है. संभव है पिछले जमाने में नागार्जुनीय वाचनाभेद का कोई खास महत्त्व रहा न होगा.

प्रसंगवशात् एक बात की सूचना करना हम यहां उचित समझते हैं कि सूत्रकृतांगचूर्णिकार 'अणुत्तरणाणी-अणुत्तरदंसी अणुत्तरणाणदंसणधरो, एतेण एकत्वं णाण-दंसणाणं ख्यापितं भवति' [श्रुत १ अध्य० २. उ० २ गा० २२] इस उल्लेख से एकोपयोगवादी आचार्य सिद्धसेन के अनुयायी मालूम होते हैं.

(४) उत्तराध्ययनसूत्र की चूर्णि में चूर्णिकार आचार्य ने पाँच स्थानों पर नागार्जुनीय वाचनाभेद का उल्लेख किया है. पाइय-टीकाकार वादिवेताल शान्तिसूरिजी ने भी इन पाँच स्थानों पर नागार्जुनीय वाचनाभेद का उल्लेख किया है. किन्तु सिर्फ एक स्थान पर नागार्जुनीय का नाम न लेकर 'पठ्यते च' ऐसा लिखकर नागार्जुनीय वाचनाभेद का उल्लेख किया है. [पत्र २६४-१].

कुछ विद्वान् स्थविर आर्य देवर्धिगणि के आगम-व्यवस्थापन व आगम-लेखन को वालभी वाचनारूप से बतलाते हैं किंतु ऊपर वालभी वाचना के विषय में जो कुछ कहा गया है उससे उनका यह कथन भ्रान्त सिद्ध होता है. वास्तव में वालभी वाचना वही है जो माथुरीवाचना के ही समय में स्थविर आर्य नागार्जुन ने वलभीनगर में संघसमवाय एकत्र कर जैन आगमों का संकलन किया था.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थविर आर्य देवर्द्धिगणि ने वलभी में संघसमवाय को एकत्रित कर जैन आगमों को व्यवस्थित किया व लिखवाया. उस समय लेखन की प्रारम्भिक प्रवृत्ति किस रूप में हुई इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता. सामान्यतया मुखोपमुख कहा जाता है कि वलभी में हजारों की संख्या में ग्रंथ लिखे गये थे, किन्तु हमारे सामने शीलांकाचार्य, नवांगवृत्तिकार अभयदेवसूरि आदि व्याख्याकार आचार्यों के जो विषादपूर्ण उल्लेख विद्यमान हैं उनसे तो यह माना नहीं जा सकता कि इतने प्रमाण में ग्रंथलेखन हुआ होगा.

श्रीशीलांकाचार्य ने सूत्रकृतांग की अपनी वृत्ति में इस प्रकार लिखा है :

इह च प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यन्ते, न च टीकासंवादी एकोऽप्यादर्शः समुपलब्धः, अत एकमादर्श-मङ्गीकृत्यास्माभिर्विवरणं क्रियत इति, एतदवगम्य सूत्रविसंवाददर्शनाच्चित्तव्यामोहो न विधेय इति.'

[मुद्रित पत्र ३३६-१]

अर्थात् चूर्णिसंमत मूलसूत्र के साथ तुलना की जाय ऐसी एक भी मूलसूत्र की हस्तप्रति आचार्य शीलांक को नहीं मिली थी.

श्री अभयदेवाचार्य ने भी स्थानांग, समवायांग व प्रश्नव्याकरण—इन तीनों अंग आगमों की वृत्ति के प्रारम्भ एवं अन्त में इसी आशय का उल्लेख किया है जो क्रमशः इस प्रकार है :

१. वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धितः ।
सूत्राणामतिगांभीर्याद् मतभेदाच्च कुत्रचित् ।।२।।

२. यस्य ग्रंथवरस्य वाक्यजलधेर्लक्षं सहस्राणि च,
चत्वारिंशदहो ! चतुर्भिरधिका मानं पदानामभूत् ।
तस्योच्चैश्चुलुकाकृतिं विदधतः कालादिदोषात् तथा,
दुर्लेखात् खिलतां गतस्य कुधियः कुर्वन्तु किं मादृशाः ? ।।२।।

३. अज्ञा वयं शास्त्रमिदं गंभीरं, प्रायोऽस्य कूटानि च पुस्तकानि ।
सूत्रं व्यवस्थाप्यमतो विमृश्य, व्याख्यानकल्पादित एव नैव ।।२।।

ऊपर उदाहरण के रूप में श्री शीलांकाचार्य व श्री अभयदेवाचार्य के जो उल्लेख दिये हैं उनसे प्रतीत होता है कि वलभी में स्थविर आर्य देवर्द्धिगणि, गंधर्ववादिवेताल शान्तिसूरि आदि के प्रयत्न से जो जैन आगमों का संकलन एवं व्यवस्थापन हुआ और उन्हें पुस्तकारूढ़ किया गया, यह कार्य जैन स्थविर श्रमणों की जैनआगमादि को ग्रंथारूढ़ करने की अल्परुचि के कारण बहुत संक्षिप्त रूप में ही हुआ होगा तथा निकट भविष्य में हुए वलभी के भंग के साथ ही वह व्यवस्थित किया हुआ आगमों का लिखित छोटा-सा ग्रंथ-संग्रह नष्ट हो गया होगा. परिणाम यह हुआ कि आखिर जो स्थविर आर्य स्कन्दिल एवं स्थविर आर्य नागार्जुन के समय की हस्तप्रतियां होंगी, उन्हीं की शरण व्याख्याकारों को लेनी पड़ी होगी. यही कारण है कि प्राचीन चूर्णियां एवं व्याख्या-ग्रंथों में सैकड़ों पाठभेद उल्लिखित पाये जाते हैं जिनका उदाहरण के रूप में मैं यहां संक्षेप में उल्लेख करता हूँ.

आचारांगसूत्र की चूर्णि में चूर्णिकार ने नागार्जुनीय वाचना के उल्लेख के अलावा 'पढिज्जइ य' ऐसा लिखकर उन्नीस स्थानों पर पाठभेद का उल्लेख किया है. आचार्य श्रीशीलांक ने भी अपनी वृत्ति में उपलब्ध हस्तप्रतियों के अनुसार कितने ही सूत्रपाठभेद दिये हैं.

इसी प्रकार सूत्रकृतांगचूर्णि में भी नागार्जुनीय वाचनाभेद के अलावा 'पठ्यते च, पठ्यते चान्यथा सद्भिः, अधवा, अथवा इह तु, मूलपाठस्तु, पाठविशेषस्तु, अन्यथा पाठस्तु, अयमपरकल्पः, पाठान्तरम्' आदि वाक्यों का उल्लेख कर केवल प्रथम-श्रुतस्कन्ध की चूर्णि में ही लगभग सवा सौ जगह जिन्हें वास्तविक पाठभेद माने जांय ऐसे उल्लेखों की गाथा की गाथाएं, पूर्वार्ध के पूर्वार्ध व चरण के चरण पाये जाते हैं. द्वितीय श्रुतस्कन्ध के पाठभेद तो इसमें शामिल ही नहीं किये गये हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य शीलांक ने भी बहुत से पाठभेद दिये हैं, फिर भी चूर्णिकार की अपेक्षा ये बहुत कम हैं, यहां पर एक बात खास ध्यान देने योग्य है कि खुद आचार्य शीलांक ने स्वीकार किया है कि 'हमें चूर्णिकारस्वीकृत आदर्श मिला ही नहीं.' यही कारण है कि उनकी टीका में चूर्णि की अपेक्षा मूल सूत्रपाठ एवं व्याख्या में बहुत अन्तर पड़ गया है. इसके साथ मेरा यह भी कथन है कि आज हमारे सामने जो प्राचीन सूत्रप्रतियां विद्यमान हैं उनके पाठभेदों का संग्रह किया जाय तो सीमातीत पाठभेद मिलेंगे. इनमें अगर भाषाप्रयोग के पाठभेदों को शामिल किया जाय तो मैं समझता हूं कि पाठभेदों का संग्रह करने वाले का दम निकल जाय. फिर भी यह कार्य कम महत्त्व का नहीं है. प्राकृत टेक्स्टसोसायटी की ओर से जो आगमों का सम्पादन किया जा रहा है उसमें इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण सब बातोंको समाविष्ट करने का यथासंभव पूरा ध्यान रखा जाता है.

दशवैकालिकसूत्र पर स्थविर अगस्त्यसिंहकृत चूर्णि, अज्ञातनामकर्तृक दूसरी चूर्णि और आचार्य हरिभद्रकृत शिष्यहिता-वृत्ति—ये तीन व्याख्याग्रंथ मौलिक व्याख्यारूप हैं. इनके अलावा जो अन्य वृत्तियां विद्यमान हैं उन सबका मूलस्रोत आचार्य हरिभद्र की बृहद्वृत्ति ही है. आचार्य हरिभद्र ने अपनी वृत्ति में "तत्रापि" 'कत्यहं, कदाऽहं, कथमहं' इत्याद्यदृश्यपाठान्तर-परित्यागेन दृश्यं व्याख्यायते" (पत्र ८५-१) ऐसा कह कर पाठभेदों की झंझट से छुटकारा ही पा लिया. अनामकर्तृक चूर्णि जिसका उल्लेख आचार्य हरिभद्र अपनी वृत्ति में वृद्ध-विवरण के नाम से करते हैं, उसमें कहीं-कहीं पाठभेदों का उल्लेख होने पर भी उनका कोई खास संग्रह नहीं है. किन्तु स्थविर अगस्त्यसिंहविरचित चूर्णि में सूत्रपाठों का न्यूनाधिक्य, पाठभेद, व्याख्याभेद आदि का संग्रह काफी मात्रा में किया गया है. मूलसूत्र की भाषा का स्वरूप भी वृद्ध-विवरण एवं आचार्य हरिभद्र की वृत्ति की अपेक्षा बहुत ही भिन्न है. वृद्धविवरण व आचार्य हरिभद्र की वृत्ति में मूल सूत्र की भाषा का स्वरूप आज की प्राचीन ताडपत्रीय प्रतियों में जैसा पाया जाता है, करीब-करीब उससे मिलता-जुलता ही है.

यहाँ पर प्राचीन चूर्णियों एवं उनमें प्राप्त होनेवाले पाठभेदादि का उल्लेख कर आपका जो समय लिया है उसका कारण यह है कि वलभी नगर में स्थविर आर्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमण प्रमुख जैनसंघ ने जो जैनआगमों का व्यवस्थापन किया था और इन्हें ग्रंथारूढ किया था वह यदि विस्तृत रूप में होता तो वालभी ग्रंथलेखन के निकट भविष्य में होनेवाले चूर्णिकार, आचार्य हरिभद्र, आचार्य शीलांक, श्री अभयदेवसूरि आदि को विकृतातिविकृत आदर्श न मिलते. जैसे आज हमें चार सौ, पाँच सौ, यावत् हजार वर्ष पुरानी शुद्धप्रायः हस्तप्रतियां मिल जाती हैं उसी प्रकार चूर्णिकार आदि को भी वलभीव्यवस्थापित शुद्ध एवं प्रामाणिक पाठ वाले आदर्श अवश्य ही मिलते, किन्तु वैसा नहीं हुआ. इसके लिये उन्होंने विषाद ही प्रकट किया है. अतः मुझे यही लगता है कि देवर्धिगणि क्षमाश्रमण का ग्रंथलेखन बहुत संक्षिप्तरूप में हुआ होगा, जो वलभी के भंग के साथ ही नष्ट हो गया.

(२४) **भद्दियायरिय**—सूत्रकृतांगचूर्णि, पत्र ४०५ के "अत्र दूषगणिक्षमाश्रमणशिष्य-भद्दियाचार्या ब्रुवते" इस उल्लेख के अनुसार भद्दियाचार्य स्थविर दूषगणि के शिष्य थे. इनके नाम का उल्लेख एवं मत का संग्रह अगस्त्यसिंहविरचित दशवै-कालिकचूर्णि पत्र ३ और अनामकर्तृक दशवैकालिकचूर्णि पत्र ४ में भी पाया जाता है.

(२५) **दत्तिलायरिय**—इनके नाम का निर्देश एवं मत का संग्रह उपर्युक्त दोनों दशवैकालिकचूर्णियों के क्रमशः ३ व ४ पत्र में है.

अज्ञातकर्तृक दशवैकालिकचूर्णि में भद्दियायरिय एवं दत्तिलायरिय—इन दोनों स्थविरों के नामों का उल्लेख व इनके मत का संग्रह सामान्यतया किया गया है, जब कि अगस्त्यसिंहविरचित चूर्णि में "इह कयरेण एक्केण अहिकारो? सव्वण्णु-भासिए का एक्कीयमयवियारणा ? तहा वि वक्खाणभेदपदरिसणत्थं कित्तिनिमित्तं गुरूणं भण्णति—**भद्दियायरि**ओवएसेणं भिन्नरूवा एक्का दससद्दे ण संगिहीया भवंति त्ति संगहेक्ककेण अहिकारो, **दत्तिलायरि**ओवएसेण सुयनाणं खओवसमिए भावे वट्टति त्ति भावेक्ककेण अहिगारो" इस प्रकार है. इस तरह इन दोनों स्थविरों के नाम का उल्लेख 'कित्तिनिमित्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरूणं' इस वाक्य से बड़े आदर के साथ किया गया है. सम्भव है, चूर्णिकार का इन स्थविरों के साथ अनुयोगविषयक कोई खास घनिष्ठ सम्बन्ध होगा.

(२६) **गंधहस्ती**—आचार्य शीलांक के आचारांगसूत्र की वृत्ति के प्रारम्भ में "शस्त्रपरिज्ञाविवरणमतिबहुगहनं च **गन्धहस्तिकृतम्**" इस उल्लेख से गन्धहस्ति आचार्य को आचारांगसूत्र के प्रथम अध्ययन शस्त्रपरिज्ञा का विवरणकार बताया है. हिमवंतस्थविरावलि में आचार्य गन्धहस्ति के विषय में इस प्रकार का निर्देश है—

"तेषामार्यसिंहानां स्थविराणां **मधुमित्रा-ऽऽर्यस्कन्दिला**चार्यनामानौ द्वौ शिष्यावभूताम्. **आर्यमधुमित्राणां** शिष्या **आर्यगन्धहस्तिनो**ऽतीवविद्वांसः प्रभावकाश्चाभवन्. तैश्च पूर्वस्थविरोत्तंसोमास्वातिवाचकविरचिततत्त्वार्थोपरि अशीतिसहस्रश्लोकप्रमाणं महाभाष्यं रचितम्. एकादशाङ्गोपरि **चार्यस्कन्दिल**स्थविराणामुपरोधतस्तैर्विवरणानि रचितानि. यदुक्तं तद्रचिताऽऽचाराङ्गविवरणान्ते—

थेरस्स **महुमित्तस्स** सेहेहिं तिपुव्वनाणजुत्तेहिं ।
मुणिगणविवंदिएहिं ववगयरागाइदोसेहिं ।।
बंभद्दीवियसाहामउडेहिं गन्धहत्थिविबुहेहिं ।
विवरणमेयं रइयं दोसयवासेसु विक्कमओ ।।"

हिमवंतस्थविरावलि के इस अंश में आचार्य गन्धहस्ति को तत्त्वार्थगन्धहस्तिमहाभाष्य के प्रणेता एवं ग्यारह जैन अंग आगमों के विवरणकार बतलाया है जबकि आचार्य शीलांक ने इन्हें केवल आचाराङ्ग के प्रथम अध्ययन के रचयिता ही कहा है. दूसरी बात यह है कि—इनकी ग्यारह अंग की वृत्तियों के उद्धरण या नामोल्लेख भाष्य-चूर्णि-वृत्तियों में कहीं भी दिखाई नहीं देते. ऐसी स्थिति में पट्टावलि के इस उल्लेख को कहां तक माना जाय, यह एक प्रश्न है. यहाँ पर गन्धहस्ती, यह विशेषनाम है, विशेषण नहीं. शीलांकाचार्यनिर्दिष्ट गन्धहस्ती हिमवंतस्थविरावलिनिर्दिष्ट गन्धहस्ती ही हैं या अन्य, इसका निर्णय करना कठिन है. स्थविरावली में जो आचारांगविवरण की अंतिम प्रशस्ति का उद्धरण दिया गया है वह कहाँ तक ठीक है, यह कहना भी जरा कठिन है. इस विशेष नाम के साथ रहे हुए गौरव को देखकर ही बाद में इस नाम का उपयोग विशेषण के रूप में होने लगा. तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति के प्रणेता सिद्धसेनाचार्य 'गन्धहस्ती' कहे जाते थे. ये हिमवंतस्थविरावलि द्वारा निर्दिष्ट गन्धहस्ती से अन्य ही हैं. क्योंकि इनका समय विक्रम आठवीं के बाद का है, जबकि स्थविरावलिनिर्दिष्ट गन्धहस्ती का समय विक्रम २०० है. श्रीयशोविजयजी उपाध्याय ने अपनी गुरुतत्त्वविनिश्चय की स्वोपज्ञवृत्ति में सन्मतितर्क के प्रणेता सिद्धसेनाचार्य को भी 'गन्धहस्ती' लिखा है.

(२७-२८) **मित्तवायग-खमासमण व साधुरक्षितगणि क्षमाश्रमण**—इन दोनों स्थविरों की मान्यता एवं नाम का उल्लेख व्यवहारभाष्य गा० ४९२ की चूर्णि में चूर्णिकार ने किया है.

(२९) **धम्मगणि खमासमण**—इन क्षमाश्रमण के मंतव्य का उल्लेख कल्पविशेषचूर्णि में "**अहवा धम्मगणिखमासमणा** देसेणं सव्वेसु वि पदेसु इमा सोही—थेराईसुं अहवा० गाहाद्वयम्" इस प्रकार है.

(३०) **अगस्त्यसिंह (भाष्यकारों के पूर्व**—ये स्थविर आर्य वज्र की शाखा में हुए हैं. इन्होंने दशवैकालिकसूत्र पर चूर्णि की रचना की है. यह चूर्णि दशवैकालिकसूत्र के विविध पाठ भेद एवं भाषा की दृष्टि से बहुत महत्त्व की है. इस चूर्णि में भाष्यकार की गाथाओं का उल्लेख न होने से इसकी रचना भाष्यकारों के पूर्व की प्रतीत होती है. इसमें कई उल्लेख ऐसे भी हैं जो चालू साम्प्रदायिक प्रणाली से भिन्न प्रकार के हैं. आचार्य श्री हरिभद्र ने अपनी वृत्ति में कहीं भी इस चूर्णि का उल्लेख नहीं किया है, इसका कारण यही प्रतीत होता है. विद्वानों की भी ज्ञातियां होती हैं. इसमें कल्किविषयक जो मान्यता चलती है और जिसका विस्तृत वर्णन तित्थोगालियपइण्णय में पाया भी जाता है, इस विषय में "अणागतमट्ठं ण णिद्धारेज्ज-जधा **कक्की** अमुको वा एवं गुणो राया भविस्सइ "ऐसा लिखकर कल्किविषयक मान्यता को आदर नहीं दिया है. इस चूर्णि में "**भणितं च वररुचिणा**—'अंबं फलाणं मम दालिमं पियं' [पृ० १७३] इस प्रकार वररुचि के कोई प्राकृत ग्रंथ का उद्धरण मिल सकता है. वररुचि का यह प्राकृत उद्धरण प्राकृतव्याकरणप्रणेता वररुचि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के समयनिर्णय के लिए उपयुक्त होने की सम्भावना है. इस चूर्णि की प्रति जैसलमेर के जिनभद्रीय ज्ञानभण्डार में सुरक्षित है. इसका प्रकाशन प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी की ओर से मेरे द्वारा सम्पादित हो कर शीघ्र ही प्रकाशित होगा.

(३१) संघदासगणि क्षमाश्रमण (वि० ५वीं शताब्दी—ये आचार्य वसुदेवहिंडी—प्रथम खण्ड के प्रणेता संघदासगणि वाचक से भिन्न हैं एवं इनके बाद के भी हैं. इन्होंने कल्पलघुभाष्य और पंचकल्पमहाभाष्य की रचना की है. वे महाभाष्यकार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के पूर्ववर्ती हैं.

(३२) जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण (वि० की ६ठी शती)—ये सैद्धान्तिक आचार्य थे. इनकी महाभाष्यकार एवं भाष्यकार के रूप में प्रसिद्धि है. दार्शनिक-गम्भीरचिन्तनपरिपूर्ण विशेषावश्यक महाभाष्य की रचना ने इन्हें बहुत प्रसिद्ध किया है. केवलज्ञान और केवलदर्शन विषयक युगपदुपयोगद्वयवाद एवं अभेदवाद को माननेवाले तार्किक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर और मल्लवादी के मत का इन्होंने उपर्युक्त भाष्य एवं विशेषणवती ग्रन्थ में निरसन किया है. जीतकल्पसूत्र, बृहत्संग्रहणी, बृहत्क्षेत्रसमास, अनुयोगद्वारचूर्णिगत अंगुलपदचूर्णि और विशेषावश्यक-स्वोपज्ञवृत्ति-षष्ठगणधरवाद व्याख्यान-पर्यन्त—इनके इतने ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं.

(३३) कोट्टार्यवादिगणी क्षमाश्रमण (वि० ५४० के बाद)—इन आचार्य ने जिनभद्रगणि की स्वोपज्ञ वृत्ति की अपूर्ण रचना को पूर्ण किया है. इन्होंने अनुसन्धित अपनी इस वृत्ति में यह सूचित किया है "निर्माप्य षष्ठगणधर-व्याख्यानं किल दिवंगता पूज्याः" अर्थात् छठे गणधरवाद का व्याख्यान करके पूज्य जिनभद्रगणी स्वर्गवासी हुए. आगे की वृत्ति का अनुसन्धान इन्होंने किया है. इस रचना के अतिरिक्त इनकी अन्य कोई रचना नहीं मिली है. यह स्वोपज्ञ-वृत्ति ला० द० विद्यामन्दिर, अहमदाबाद की ओर से प्रकाशित होगी.

(३४) सिद्धसेनगणि क्षमाश्रमण (वि० छठी शती)—इनकी आज कोई स्वतन्त्र रचना प्राप्त नहीं है. इनके रचे हुए कुछ सन्दर्भ, जो निर्युक्ति, भाष्य आदि के व्याख्यानरूप गाथासन्दर्भ हैं, निशीथचूर्णि व आवश्यकचूर्णि में मिलते हैं. निशीथ-चूर्णि में इनका नाम एवं गाथाएँ छः जगह उल्लिखित हैं, जिनके भद्रबाहुकृत निर्युक्तिगाथाओं तथा पुरातनगाथाओं के व्याख्यानरूप होने का निर्देश है. आवश्यकचूर्णि में (विभाग २, पत्र २३३) इनके नाम के साथ दो व्याख्यान-गाथाएँ दी गई हैं. पंचकल्पचूर्णि में भी "उक्तं च **सिद्धसेनक्षमाश्रमणगुरुभिः**" ऐसा लिख कर इनकी एक गाथा का उद्धरण किया है. इन उल्लेखों से पता चलता है कि इनकी आगमिक व्याख्यानगर्भित कोई कृति या कृतियाँ अवश्य होनी चाहिए जो आज उपलब्ध नहीं हैं.

(३५) सिद्धसेनगणि (वि० सं० छठी शती)—इनकी एक ही कृति प्राप्त हुई है जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणकृत जीत-कल्प पर रचित चूर्णि. उपर्युक्त सिद्धसेनगणी क्षमाश्रमण से ये सिद्धसेन गणि भिन्न है.

(३६) जिनदासगणी महत्तर (वि० ७वीं शताब्दी)—निशीथचूर्णि के प्रारम्भिक उल्लेखानुसार इनके विद्यागुरु प्रद्युम्न-गणी क्षमाश्रमण थे. आज जो चूर्णियां उपलब्ध हैं इनमें से नन्दी, अनुयोगद्वार और निशीथ की चूर्णियां इन्हीं की रचनाएं हैं.

(३७) गोपालिक महत्तर शिष्य (वि० ७वीं शताब्दी)—उत्तराध्ययनचूर्णि के रचयिता आचार्य ने अपने नाम का निर्देश न कर 'गोपालिकमहत्तरशिष्य' इतना ही उल्लेख किया है. इनकी अन्य कोई रचना उपलब्ध नहीं है.

(३८) जिनभट या जिनभद्र (वि. ८वीं शताब्दी)—ये हरिभद्र के विद्यागुरु थे. आवश्यक वृत्ति के अन्त में आचार्य हरिभद्र ने इनका नामोल्लेख किया है. एतद्विषयक पुष्पिका इस प्रकार है "कृतिः सिताम्बराचार्य **जिनभट** निगदानुसारिणो विद्याधरकुलतिलकाचार्य**जिनदत्त**शिष्यस्य धर्मतो **याकिनी**महत्तरासूनोरल्पमतेराचार्य**हरिभद्रस्य**." इस उल्लेख में 'जिनभटनिगदानुसारिणः' वाक्य विद्यागुरुत्व का सूचक है. प्रत्यन्तरों में 'जिनभट' के बजाय 'जिनभद्र' नाम भी मिलता है. "गुरुवस्तु व्याचक्षते" ऐसा लिखकर कई जगह हरिभद्रसूरि ने अपनी कृतियों में इनके मन्तव्य का निर्देश किया है.

(३९) हरिभद्रसूरि (वि० ८ वीं शताब्दी)—इनका उपनाम 'भवविरह' भी है. अपनी कृतियों में इन्होंने 'भवविरह'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद का कई जगह प्रयोग किया है. कहीं-कहीं इनकी कृतियों में केवल 'विरह' पद का प्रयोग होने के कारण इन्हें विरहाङ्क भी कहते हैं. ये अपने को अनेक ग्रन्थों की अन्तिम पुष्पिका में 'धर्मतो याकिनीमहत्तरासूनु' के रूप में भी लिखते हैं. ये जैन आगमों के पारंगत आचार्य थे एवं दर्शनशास्त्रों के प्रखर ज्ञाता थे. इन्होंने १४४४ ग्रन्थों की रचना की ऐसा प्रघोष चला आता है. इन्होंने अपनी कृतियों में अपनी जिन-जिन रचनाओं के नाम निर्दिष्ट किये हैं उनमें से भी बहुत से ग्रन्थ आज अप्राप्य हैं. फिर भी प्राचीन ज्ञानभंडारों को टटोलने से इनकी नई रचनाएँ प्राप्त होती हैं. कुछ वर्ष पहले ही खंभात के प्राचीन ताडपत्रीय भंडार में से इनका रचा हुआ योगशतक नामक ग्रन्थ प्राप्त हुआ था. अभी हाल ही में कच्छ-मांडवी के खरतरगच्छीय प्राचीन ज्ञानभंडार में से इसी ग्रन्थ की स्वोपज्ञ टीका की वि० सं० ११६४ में लिखी हुई ताडपत्रीय प्रति भी प्राप्त हुई है.

इसी प्रकार आज अपने पास जो लाखों की तादाद में हस्तप्रतियां विद्यमान हैं जिनकी व्यवस्थित सूचियां अभी तक नहीं बनी हैं, उन्हें टटोला जाय तो बहुत संभव है कि अपनी कल्पना में भी न हों ऐसी प्राचीन-प्राचीनतम अनेक कृतियां प्राप्त हों. आचार्य हरिभद्र ने तत्त्वविचार और आचार के निरूपण में समन्वयशैली को विशिष्टरूप से आदर दिया है, अतः इनकी रचनाओं में प्रचुर गांभीर्य आया है. इनके विषय में विद्वानों ने अनेक दृष्टियों से काफी लिखा है, तथापि प्रसंगवश यहां कुछ कहना अनुचित न होगा. इन्होंने आवश्यक, नन्दी, अनुयोगद्वार, दशवैकालिक, प्रज्ञापना, जीवाभिगम और पिण्डनिर्युक्ति—इन जैन आगमों पर अप्रतिम एवं मौलिक वृत्तियों का निर्माण किया है. आवश्यकसूत्र पर तो इन्होंने दो वृत्तियाँ लिखी थीं. इनमें से शिष्यहिता नामक २२००० श्लोक परिमित लघुवृत्ति ही प्राप्त है. किन्तु दुर्भाग्य है कि दार्शनिक चिन्तनों के महासागर जैसी बृहद्वृत्ति अनुपलब्ध है. इस वृत्ति का इन्होंने अपनी शिष्यहिता-लघुवृत्ति के प्रारंभ में "यद्यपि मया तथान्यैः कृताऽस्य विवृतिस्तथापि संक्षेपात्" इस प्रकार निर्देश किया है. इसी बृहद्वृत्ति को लक्ष्य करके इन्होंने नन्दीसूत्र की वृत्ति में भी "साङ्केतिकशब्दार्थसम्बन्धवादिमतमप्यावश्यके विचारयिष्यामः" इस प्रकार का उल्लेख किया है. इस उल्लेख से पता लगता है कि इस बृहद्वृत्ति में इन्होंने कितने दार्शनिक वादों की गहरी समीक्षा की होगी. इस बृहद्वृत्ति का प्रमाण मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने अपने आवश्यकहारिभद्री वृत्ति के टिप्पन में (पत्र २-१) "यद्यपि मया वृत्तिः कृता इत्येवंवादिनि वृत्तिकारे चतुरशीतिसहस्रप्रमाणाऽनेनैवावश्यकवृत्तिरपरा कृताऽऽसीदिति प्रवादः" इस उल्लेख द्वारा ८४००० श्लोक बतलाया है.

आचार्य हरिभद्र अनेक विषयों के महान् ज्ञाता थे. इनकी ग्रन्थरचनाओं का प्रवाह देखने से अनुमान होता है कि ये पूर्वावस्था में सांख्यमतानुयायी रहे होंगे. इन्होने उस युग के भारतीय दर्शनशास्त्रों का गहराई से अध्ययन करने में कोई कमी नहीं रखी थी. यही कारण है कि इन्होंने अतिगंभीरतापूर्वक समस्त दार्शनिक तत्त्वों का जैनदर्शन के साथ समन्वय करने का प्रयत्न किया है. इन्होंने धर्मसंग्रहणी, पंचवस्तुक, उपदेशपद, विंशतिविंशिका, पंचाशक, योगशतक, श्रावकधर्मविधितंत्र, दिनशुद्धि आदि शास्त्रों का तथा समराइच्चकहा, धूर्ताख्यान आदि कथाओं का प्राकृत भाषा में निर्माण कर प्राकृतभाषा को समृद्ध किया है. इन ग्रन्थों में दार्शनिक, शास्त्रीय, ज्योतिष, योग, चरित्र आदि अनेक विषयों का संग्रह है. इस प्रकार प्राकृतभाषा को इनकी बड़ी देन है. इसी प्रकार संस्कृत में भी इन्होंने अनेकान्तवाद, अनेकान्तजयपताका, न्यायप्रवेश, शास्त्रवार्तासमुच्चय, षड्दर्शनसमुच्चय, अष्टकप्रकरण, षोडशकप्रकरण, धर्मबिन्दु, योगबिन्दु, योगदृष्टिसमुच्चय, लोकतत्त्वनिर्णय आदि ग्रन्थ बनाये हैं. इस प्रकार संस्कृतभाषा को भी इनकी बड़ी देन है.

(४०) **कोट्याचार्य**—(वि० ९ वीं शताब्दी) इन्होंने विशेषावश्यकमहाभाष्य पर टीका की है. इसके अलावा इनकी अन्य कोई रचना नहीं मिली है.

(४१) **वीराचार्ययुगल**—(१ वि० ९-१० शताब्दी और २ वि० १३ श०) आचार्य हरिभद्र उपर्युक्त पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति को पूर्ण किये विना ही दिवंगत हो गये थे. इसकी पूर्ति वीराचार्य ने की थी. वीराचार्य दो हुए हैं. एक आचार्य हरिभद्र की अपूर्ण वृत्ति को पूर्ण करनेवाले और दूसरे पिण्डनिर्युक्ति की स्वतन्त्र वृत्ति बनाने वाले. इन दूसरे वीराचार्य ने अपनी वृत्ति के प्रारम्भ में इस प्रकार लिखा है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पञ्चाशकादिशास्त्रव्यूहप्रविधायका विवृतिमस्याः ।
आरेभिरे विधातुं पूर्वं **हरिभद्रसूरिवराः** ।।७।।
ते स्थापनाख्यदोषं यावद् विवृत्ति विधाय दिवमगमन् ।
तदुपरितनी तु कैश्चिद् **वीराचार्यैः** समाप्येषा ।।८।।
तत्रामीभिरमुष्याः सुगमा गाथा इमा इति विभाव्य ।
काश्चिन्न व्याख्याताः, या विवृतास्ता अपि स्तोकम् ।।९।।
ताः सम्प्रति मन्दधियां दुर्बोधा इति मया समस्तानाम् ।
तासां व्यक्तव्याख्याहेतोः क्रियते प्रयासोऽयम् ।।१०।।

(४२) शीलांकाचार्य (वि० १० श०)—इन्होंने आचारांग व सूत्रकृतांग की टीका की है. इन दो टीकाओं में दार्शनिक पदार्थों की अनेक प्रकार से विचारणा की गई है. आचारांग प्रथम श्रुतस्कंधटीका की समाप्ति वि० सं० ९०७ में हुई है और द्वितीय श्रुतस्कन्धटीका की समाप्ति वि० सं० ९१९ या ९३३ में हुई है. चउप्पन्न महापुरिसचरिय के प्रणेता शीलांक से ये शीलांक भिन्न हैं.

(४३) वादिवेताल शान्तिसूरि (वि० ११ वीं शताब्दी)—उत्तराध्ययनसूत्र की पाइयटीका के प्रणेता यही आचार्य हैं. ये विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में हुए हैं. गोपालिकमहत्तरशिष्यप्रणीत चूर्णि के बाद अनेक दार्शनिक वादों से पूर्ण समर्थ टीका यही है. इसके बाद जो अनेक टीकाएँ लिखी गईं उन सब का मूल स्रोत यही टीका है. इसमें प्राकृत अंश की अधिकता है अतः इसका नाम 'पाइय टीका' प्रचलित हो गया है. आचार्य हरिभद्रविरचित और आचार्य मलयगिरि-विरचित आवश्यकसूत्र की टीकाएँ, द्रोणाचार्य की ओघनिर्युक्तिवृत्ति व नेमिचन्द्रसूरि की उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधा टीका प्राकृतप्रधान ही है.

(४४) द्रोणाचार्य (वि० १२ श०)—ये जैन आगमों के अतिरिक्त स्व-परदर्शनशास्त्रों के भी ज्ञाता आचार्य थे. इन्होंने अभयदेवाचार्यविरचित जैन अंग आगमों की टीकाओं के अतिरिक्त अन्य टीकाग्रन्थों का भी संशोधन आदि किया है. इनकी अपनी एक ही कृति है और वह है ओघनिर्युक्तिवृत्ति.

(४५) अभयदेवसूरि (वि० १२ वीं श०)—इन्होंने स्थानांग आदि नौ अंगसूत्रों पर वृत्तियां बनाई हैं अतः ये 'नवाङ्ग-वृत्तिकार' के नाम से पहचाने जाते हैं. इन अंग आगमों में जगह-जगह वर्णक-संदर्भों का निर्देश किया गया है अतः सर्व-प्रथम इन्होंने औपपातिक उपांगसूत्र की वृत्ति बनाई जिससे बार-बार आनेवाले निर्दिष्ट वर्णकस्थानों में एकवाक्यता बनी रहे. आचार्य अभयदेवसूरि की इन वृत्तियों का संशोधन व परिवर्धन उपर्युक्त चैत्यवासी श्रीद्रोणाचार्य ने किया है, जो उस युग के एक महान् आगमधर आचार्य थे. आचार्य अभयदेवसूरि ने अपनी इन वृत्तियों में काफी दत्तचित्त हो कर अपने युग में प्राप्त अनेकानेक प्राचीन-प्राचीनतम सूत्रप्रतियों को एकत्र कर अंगसूत्रों के पाठों को व्यवस्थित करने का महान् कार्य किया है, अतः इनकी वृत्तियों में पाठभेद एवं वाचनान्तर आदि का काफी संग्रह हुआ है. इस कार्य में इनके अनेक विद्वान् शिष्य-प्रशिष्यों ने इन्हें सहायता दी है, इस प्रकार का उल्लेख इन्होंने अपनी ग्रन्थप्रशस्तियों में किया है.

(४६) मलधारी हेमचन्द्रसूरि (वि० १२ श०)—ये आचार्य जैन आगमों के समर्थ ज्ञाता थे. इन्होंने जिनभद्रगणि क्षमा-श्रमणविरचित विशेषावश्यकमहाभाष्य पर २८००० श्लोकपरिमित विस्तृत विवरण की रचना वि० सं० ११७५ में की. अनुयोगद्वारसूत्र पर इन्होंने विस्तृत व्याख्या रची है. आवश्यकसूत्र की हारिभद्रीवृत्ति पर विस्तृत टिप्पन भी इन्होंने लिखा है. ये रचनाएं इनके प्रखर पाण्डित्य की सूचक हैं. इन विवरणों के अतिरिक्त इन्होंने प्राचीन शतककर्मग्रन्थवृत्ति, जीवसमासप्रकरणवृत्ति, पुष्पमालाप्रकरण स्वोपज्ञवृत्तियुक्त, भवभावनाप्रकरण स्वोपज्ञवृत्तियुक्त आदि ग्रन्थ भी बनाये हैं. विशेषावश्यकमहाभाष्य की टीका के अन्त में आपने अपनी ग्रन्थरचनाओं का क्रम इस प्रकार दिया है—

"ततो मया तस्य परमपुरुषस्योपदेशं श्रुत्वा विरचय्य झटिति निवेशितमावश्यकटिप्पनकाभिधानं सद्भावनामञ्जूषायां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नूतनफलकम्. ततोऽपरमपि **शतकविवरणनामकम्**, अन्यदप्य**नुयोगद्वारवृत्ति**संज्ञितम्, ततोऽपरमप्यु**पदेशमाला**सूत्रा-भिधानम्, अपरं तु तद्वृत्तिनामकम्, अन्यच्च **जीवसमासविवरण**नामधेयम्, अन्यत्तु भवभावनासूत्रसंज्ञितम् अपरं तु **तद्विवरण**नाम-कम्, अन्यच्च झटिति विरचय्य तस्याः सद्भावनामञ्जूषाया अङ्गभूतं निवेशितं **नन्दिटिप्पनक**नामधेयं नूतनं फलकं. एतैश्च नूतनफलकैर्निवेशितैर्वज्रमयीव सञ्जातासौ मञ्जूषा तेषां पापानामगम्या. ततस्तैरतीवच्छलघातितया सञ्चूर्णयितुमारब्धं तद्वार-कपाटसम्पुटम्. ततो मयाससम्भ्रमेण निपुणं तत्प्रतिविधानोपायं चिन्तयित्वा विरचयितुमारब्धं तद्द्वारपिधान-हेतोर्**विशेषावश्यकविवरणा**भिधानं वज्रमयमिव नूतनकपाटसम्पुटम्. ततश्चा**भयकुमारगणि-धनदेवगणि-जिनभद्रगणि-लक्ष्मणगणि-विबुधचन्द्रा**दिमुनिवृन्द-**श्रीमहानन्द** -श्रीमहत्तरा-**वीरमती**गणिन्यादिसाहाय्याद् 'रे रे ! निश्चितमिदानीं हता वयं यद्येतन्निष्पद्यते, ततो धावत धावत गृह्णीत गृह्णीत लगत लगत' इत्यादि पूत्कुर्वतां सर्वात्मशक्त्या प्रहरतां हाहारवं कुर्वतां च मोहादिचरटानां चिरात् कथं कथमपि विरचय्य तद्द्वारे निवेशितमेतदिति." [पत्र १३५६]

इस उल्लेख में आपने **नन्दिटिप्पनक** रचना का उल्लेख किया है जो आज प्राप्त नहीं है. साथ में यह भी एक बात है कि—इन्हीं के शिष्य श्री श्रीचन्द्रसूरि ने प्राकृत मुनिसुव्रतस्वामिचरित्र के अन्त में श्री हेमचन्द्र सूरि का जीवनचरित्र दिया है जिसमें इनकी ग्रन्थरचनाओं का भी उल्लेख किया है किन्तु उसमें **नन्दीसूत्रटिप्पनक** के नाम का निर्देश नहीं है, यह आश्चर्य की बात है. मुनिसुव्रतस्वामिचरित्र का उल्लेख इस प्रकार है.

जे तेण सयं रइया गंथा ते संपइ कहेमि ।।४१।।
सुत्तमुवएसमाला-भवभावणपगरणाणि काऊणं ।
गंथसहस्सा चउदस तेरस वित्ती कया जेण ।।४२।।
अणुओगदाराणं जीवसमासस्स तह य **सयगस्स** ।
जेणं छ सत्त चउरो गंथसहस्सा कया वित्ती ।।४२।।
मूलावस्सयवित्तीए उवरि रइयं च टिप्पणं जेण ।
पंच सहस्सपमाणं विसमट्ठाणावबोधयरं ।।४४।।
जेण **विसेसावस्सयसुत्तस्सुवरिं** सवित्थरा **वित्ती** ।
रइया परिप्फुडत्था अडवीस सहस्सपरिमाणा ।।४५।।
वक्खाणगुणपसिद्धिं सोऊणं जस्स **गुज्जरनरिंदो** ।
जयसिंहदेवनामो कयगुणिजणमणचमक्कारो ।।४६।।

इस उल्लेख में श्रीहेमचन्द्र सूरि रचित सब ग्रन्थों के नाम और उनका ग्रन्थप्रमाण भी उल्लिखित है. सिर्फ इसमें नन्दी-सूत्रटिप्पनक का नाम शामिल नहीं है. संभावना की जाती है कि इस चरित की प्रारम्भिक नकल करने के समय प्राचीन काल से ही ४४ गाथा के बाद की एक गाथा छूट गई है. अस्तु, कुछ भी हो, श्रीहेमचन्द्रसूरि महाराज ने आप ही अपनी विशेषावश्यकवृत्ति के अन्त में "अन्यच्च झटिति विरचय्य तस्याः सद्भावनामञ्जूषाया अङ्गभूतं निवेशितं **नन्दि-टिप्पनक**नामधेयं फलकम्" ऐसा उल्लेख किया है, इससे यह बात तो निर्विवाद है कि—आपने **नन्दिटिप्पनक** की रचना अवश्य की थी, जो आज प्राप्त नहीं है. आज जो **नन्दिटिप्पनक** प्राप्त है वह शीलभद्रसूरि एवं धनेश्वरसूरि इन दो गुरु के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि का रचित है जो प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी की ओर से छप कर प्रकशित होगा.

(४७) **आचार्य मलयगिरि (वि० १२-१३ श०)**—इनके गुरु, गच्छ आदि के नाम का कोई पता नहीं लगता. ये गूर्जरेश्वर चौलुक्यराज जयसिंहदेव के माननीय और महाराजा कुमारपालदेव के धर्मगुरु श्रीहेमचन्द्राचार्य के विद्या-आराधना के सहचारी थे. आचार्य हेमचन्द्र के साथ इनका सम्बन्ध अति गहरे पूज्य भाव का था. इसलिए इन्होंने अपनी आवश्यक-वृत्ति में आचार्य हेमचन्द्र की द्वात्रिंशिका का उद्धरण देते हुए "आह च स्तुतिषु गुरवः' इस प्रकार उनके लिए अत्यादर-गर्भित शब्दप्रयोग किया है. इन्होंने नन्दीसूत्र, भगवती-द्वितीयशतक, राजप्रश्नीय, प्रज्ञापना, जीवाभिगम, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, व्यवहारसूत्र, बृहत्कल्प, आवश्यक, पिण्डनिर्युक्ति एवं ज्योतिष्करण्डक-इन जैन-आगमों पर सपादलक्ष श्लोक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाण वृत्तियों की रचना की है. इनकी इन वृत्तियों और धर्मसंग्रहणी, कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह आदि की वृत्तिओं के अवगाहन से पता लगता है कि ये केवल जैन आगमों के ही धुरंधर ज्ञाता एवं पारंगत विद्वान् न थे अपितु गणितशास्त्र, दर्शनशास्त्र एवं कर्मसिद्धान्त में भी पारंगत थे. इन्होंने मलयगिरिशब्दानुशासन नामक व्याकरण की भी रचना की थी. अपने वृत्तिग्रंथों में ये इसी व्याकरण के सूत्रों का उल्लेख करते हैं. इनके जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका ओघनिर्युक्तिटीका, विशेषावश्यकवृत्ति, तत्त्वार्थसूत्रटीका, धर्मसारप्रकरणटीका, देवेन्द्रनरकेन्द्रप्रकरणटीका आदि कई ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं हैं. इनकी कोई मौलिक कृति उपलब्ध नहीं है. देखा जाता है कि ये व्याख्याकार ही रहे हैं. व्याख्याकारों में इनका स्थान सर्वोत्कृष्ट है.

(४८) श्रीचन्द्रसूरि (वि० १२-१३ श०)—श्री श्रीचन्द्रसूरि दो हुए हैं. एक मलधारी श्रीहेमचन्द्रसूरि के शिष्य, जिन्होंने संग्रहणीप्रकरण, मुनिसुव्रतस्वामिचरित्र प्राकृत, लघुप्रवचनसारोद्धार आदि की रचना की है. दूसरे चन्द्रकुलीन श्रीशीलभद्रसूरि और धनेश्वरसूरि गुरुयुगल के शिष्य, जिन्होंने न्यायप्रवेशपञ्जिका, जयदेव छन्दःशास्त्रवृत्ति-टिप्पनक, निशीथचूर्णिटिप्पनक, नन्दिसूत्रहारिभद्री वृत्तिटिप्पनक, जीतकल्पचूर्णिटिप्पनक, पंचोपांगसूत्रवृत्ति, श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रवृत्ति, पिण्डविशुद्धिवृत्ति आदि की रचना की है. यहाँ पर ये दूसरे श्रीचन्द्रसूरि ही अभिप्रेत हैं. इनका आचार्यावस्था के पूर्व में पार्श्वदेवगणि नाम था—ऐसा आपने ही न्यायप्रवेशपञ्जिका की अन्तिम पुष्पिका में सूचित किया है.

(४९) आचार्य क्षेमकीर्ति (वि० १३३२)—ये तपागच्छ के मान्य गीतार्थ आचार्य थे. आचार्य मलयगिरिप्रारब्ध बृहत्कल्पवृत्ति की पूर्ति इन्होंने बड़ी योग्यता के साथ की है. आचार्य मलयगिरि ने जो वृत्ति केवल पीठिका की गाथा ६०६ पर्यन्त ही लिखी थी उसकी पूर्ति लगभग सौ वर्ष के बाद में इन्होंने वि० सं० १३३२ में की. इस वृत्ति के अतिरिक्त इनकी अन्य कोई कृति प्राप्त नहीं हुई है.

बृहद्भाष्यकारादि [वि० ८ वीं श०]—यहां पर अनेकानेक प्राचीन स्थविरों का जो महान् आगमधर थे तथा जिनके पास प्राचीन गुरुपरम्पराओं की विरासत थी, संक्षेप में परिचय दिया गया. ऐसे भी अनेक गीतार्थ स्थविर हैं जिनके नाम का कोई पता नहीं है. कल्पबृहद्भाष्यकार आदि एवं कल्पविशेषचूर्णिकार आदि इसी प्रकार के स्थविर हैं जिनकी विद्वत्ता की परिचायक कृतियां आज हमारे सामने विद्यमान हैं.

अवचूर्णिकारादि [वि० १२ श० से १८ श०]—ऊपर जैन आगमों के 'धुरंधर स्थविरों का परिचय दिया गया है. इनके बाद एक छोटा किन्तु महत्त्व का कार्य करने वाले जो प्रकीर्णककार, अवचूर्णिकार आदि आचार्य हुए हैं वे भी चिरस्मरणीय हैं. यहा संक्षेप में इनके नामादि का उल्लेख कर देता हूँ—

१. पार्श्वसाधु [वि० सं० ९५६], २. वीरभद्रगणी [वि० सं० १०७८ में आराधनापताका, बृहच्चतुःशरण आदि के प्रणेता], ३. नमिसाधु [सं० ११२३], ४. नेमिचन्द्रसूरि [सं० ११२९], ५. मुनिचन्द्रसूरि [वि० १२वीं शताब्दी; ललितविस्तरापञ्जिका, उपदेशपदटीका, देवेन्द्रनरकेन्द्र प्रकरणवृत्ति, अनेकसंख्यप्रकरण, कुलक आदि के प्रणेता], यशोदेवसूरि [सं० ११८०], ७ वि० जयसिंहसूरि [सं० ११८३, श्रावकप्रतिक्रमणचूर्णि के प्रणेता], ८. तिलकाचार्य [सं० १२९६], ९. सुमतिसाधु [वि० १३वीं श०], १०. पृथ्वीचन्द्रसूरि [वि० १३वीं श०], ११. जिनप्रभसूरि [सं० १३६४], १२. भुवनतुंगसूरि [वि० १४ वीं श०], १३. ज्ञानसागरसूरि [सं० १४४०], १४. गुणरत्नसूरि [वि० १५वीं श०], १५. रत्नशेखरसूरि [सं० १४९६], १६. कमलसंयमोपाध्याय [सं० १५४४], १७. विनयहंसगणी [सं० १५७२], १८. जिनहंससूरि [सं० १५८२], १९. हर्षकुल [सं० १५८३], २०. ब्रह्मर्षि [वि० १६वीं श०], २१. विजयविमलगणी-वानर्षि [सं० १६३४], २२. समयसुन्दरोपाध्याय [वि० १७ वीं श०] २३. धर्मसागरोपाध्याय [सं० १६३९], २४. पुण्यसागरोपाध्याय [सं० १६४५], २५. शान्तिचन्द्रोपाध्याय [सं० १६५०], २६. भावविजयगणि [वि० १७ वीं श०] २७. ज्ञानविमलसूरि [वि० १७वीं श०], २८. लक्ष्मीवल्लभगणि [वि० १७वीं श०], २९-३०. सुमतिकल्लोलगणि व हर्षनन्दनगणि [सं० १७०५, स्थानांग सूत्रवृत्तिगतगाथावृत्ति के रचयिता], ३१. नगर्षि [वि० १८ वीं श०] इत्यादि. इन विद्वान् आचार्यों ने जैन आगमों पर छोटी-बड़ी महत्त्व की वृत्ति, लघुवृत्ति, पंजिका, अवचूरि, अवचूर्णि, दीपिका, दीपक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पन, विषमपदपर्याय आदि भिन्न भिन्न नामों वाली व्याख्याएं लिखी हैं जो मूलसूत्रों का अर्थ समझने में बड़ी सहायक है. ये व्याख्याएं प्राचीन वृत्तियों के अंशों का शब्दशः संग्रह रूप होने पर भी कभी-कभी इन व्याख्याओं में पारिभाषिक संकेतों को समझाने के लिए प्रचलित देशी भाषा का भी उपयोग किया गया है. कहीं-कहीं प्राचीन वृत्तियों में 'सुगम' 'स्पष्ट' 'पाठसिद्ध' आदि लिखकर छोड़ दिये गये स्थानों की व्याख्या भी इनमें पाई जाती है. इस दृष्टि से इन व्याख्याकारों के भी हम बहुत कृतज्ञ हैं.

प्राकृत वाङ्मय

भारतीय प्राकृत वाङ्मय अनेक विषयों में विभक्त है. सामान्यतः इनका विभाग इस प्रकार किया जा सकता है :

जैन आगम, जैन प्रकरण, जैन चरित-कथा, स्तुति-स्तोत्रादि, व्याकरण, कोष, छंदःशास्त्र, अलंकार, काव्य, नाटक, सुभाषित आदि. यहां पर इन सबका संक्षेप में परिचय दिया जायगा.

जैन आगम—जिस प्रकार वैदिक और बौद्ध साहित्य मुख्य और अवान्तर अनेक विभागों में विभक्त है उसी प्रकार जैन आगम भी अनेक विभागों में विभक्त है. प्राचीन काल में आगमों के अंग आगम और अंगबाह्य आगम या कालिक आगम और उत्कालिक आगम इस तरह विभाग किये जाते थे. अंग आगम वे हैं जिनका श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर-पट्टशिष्यों ने निर्माण किया है. अंगबाह्य आगम वे हैं जिनकी रचना श्रमण भगवान् महावीर के अन्य गीतार्थ स्थविरों, शिष्यों-प्रशिष्यों एवं उनके परम्परागत स्थविरों की थी. स्थविरों ने इन्हीं आगमों के कालिक और उत्कालिक ऐसे दो विभाग किये हैं. निश्चित किये गये समय में पढ़े जाने वाले आगम कालिक हैं और किसी भी समय में पढ़े जाने वाले आगम उत्कालिक हैं. आज सैकड़ों वर्षों से इनके मुख्य विभाग अंग, उपांग, छेद, मूल आगम, शेष आगम एवं प्रकीर्णक के रूप में रूढ़ हैं. प्राचीन युग में इन आगमों की संख्या नंदीसूत्र और पाक्षिकसूत्र के अनुसार चौरासी थी परन्तु आज पैंतालीस है. नंदीसूत्र में एवं पाक्षिकसूत्र में जिन आगमों के नाम दिये हैं उनमें से आज बहुत-से आगम अप्राप्य हैं जब कि आज माने जाने वाले आगमों की संख्या में नये नाम भी दाखिल हो गये हैं जो बहुत पीछे के अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के भी हैं. आज माने जानेवाले पैंतालीस आगमों में से बयासीस आगमों के नाम नंदीसूत्र और पाक्षिकसूत्र में पाये जाते हैं किन्तु आज आगमों का जो क्रम प्रचलित है वह ग्यारह अंगों को छोड़कर शेष आगमों का नंदीसूत्र और पाक्षिकसूत्र में नहीं पाया जाता. नंदीसूत्रकार ने अंग आगम को छोड़कर शेष सभी आगमों को प्रकीर्णकों में समाविष्ट किया है. आगम के अंग, उपांग, छेद, प्रकीर्णक आदि विभागों में से अंगों के बारह होने का समर्थन स्वयं अंग ग्रंथ भी करते हैं. उपांग आज बारह माने जाते हैं किन्तु स्वयं निरयावलिका नामक उपांग में उपांग के पांच वर्ग होने का उल्लेख है. छेद शब्द निर्युक्तियों में निशीथादि के लिए प्रयुक्त है. प्रकीर्णक शब्द भी नंदीसूत्र जितना तो पुराना है ही किन्तु उसमें अंगेतर सभी आगमों को प्रकीर्णक कहा गया है.

अंग आगमों को छोड़कर दूसरे आगमों का निर्माण अलग-अलग समय में हुआ है. पण्णवणा सूत्र श्यामार्यप्रणीत है. दशा, कल्प एवं व्यवहार सूत्र के प्रणेता चतुर्दश पूर्वधर स्थविर आर्य भद्रबाहु हैं. निशीथसूत्र के प्रणेता आर्य भद्रबाहु या विशाखगणि महत्तर हैं. अनुयोगद्वारसूत्र के निर्माता स्थविर आर्यरक्षित हैं. नंदीसूत्र के कर्ता श्री देववाचक है. प्रकीर्णकों में गिने जाने वाले चउसरण, आउर पच्चक्खाण, भत्तपरिण्णा और आराधनापताका के रचयिता वीरभद्रगणि हैं. ये आराधनापताका की प्रशस्ति के 'विक्कमनिवकालाओ अट्ठुत्तरिमे समासहस्सम्मि' और 'अट्ठत्तरिमे समासहस्सामि' पाठभेद के अनुसार विक्रम संवत् १००८ या १०७८ में हुए हैं. बृहट्टिप्पणिकाकार ने आराधनापताका का रचनाकाल 'आराधनापताका १०७८ वर्षे वीरभद्राचार्यकृता' अर्थात् सं० १०७८ कहा है. 'आराधनापताका' में ग्रंथकार ने 'आराहणाविहिं पुण भत्तपरिण्णाइ वण्णिमो पुव्विं' (गाथा ५१) अर्थात् 'आराधनाविधि का वर्णन हमने पहले भक्त. परिज्ञा में कर दिया है' ऐसा लिखा है. इस निर्देश से यह ग्रंथ इन्हीं का रचा हुआ सिद्ध होता है. आज के चउसरण एवं आउरपच्चक्खाणके रचना-क्रम को देखने से ये प्रकीर्णक भी इन्हीं के रचे हुए प्रतीत होते हैं. वीरभद्र की यह आराधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पताका यापनीय 'आचार्यप्रणीत आराधना भगवती' का अनुकरण करके रची गई है. नंदीसूत्र में 'आउरपच्चक्खाण' का जो नाम आता है वह आज के 'आउरपच्चक्खाण से अलग है. सामान्यतः वीरभद्राचार्य को भगवान् महावीर का शिष्य मानते हैं परन्तु उपरोक्त प्रमाण को पढ़ने के बाद यह मान्यता भ्रान्त सिद्ध होती है. इस प्रकार दूसरे आगम भी अलग-अलग समय में रचे हुए हैं. हो सकता है कि रायपसेणीय सूत्र भगवान् महावीर के समय ही में रचा गया हो.

नंदी—पाक्षिक सूत्रों के अनुसार आगमों के चौरासी नामों व आज के प्रचलित आगमों के नामों से विद्वान् परिचित हैं ही अतः उनका उल्लेख न करके मैं मुद्दे की बात कह देता हूं कि—आज अंगसूत्रों में जो प्रश्नव्याकरणसूत्र है वह मौलिक नहीं किन्तु तत्स्थानापन्न कोई नया ही सूत्र है. इस बात का पता नंदीसूत्र व समवायांग के आगम-परिचय से लगता है. आचार्य श्री मुनिचंद्रसूरि ने देवेन्द्र-नरकेन्द्र प्रकरण की अपनी वृत्ति में राजप्रश्नीय सूत्र का नाम 'राजप्रसेनजित्' लिखा है जो नंदी-पाक्षिक सूत्र में दिये हुए 'रायप्पसेणइयं' इस प्राकृत नाम से संगति बैठाने के लिए है. वैसे राजप्रश्नीय में प्रदेशिराजा का चरित्र है. इस आगम को पढ़ते हुए पेतवत्थु नामक बौद्धग्रंथ का स्मरण हो आता हैं.

प्रकीर्णक—सामान्यतया प्रकीर्णक दस माने जाते हैं किन्तु इनकी कोई निश्चित नामावली न होने के कारण ये नाम कई प्रकार से गिनाये जाते हैं. इन सब प्रकारों में से संग्रह किया जाय तो कुल बाईस नाम प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार हैं—

१. चउसरण, २. आउरपच्चक्खाण, ३. भत्तपरिण्णा, ४. संथारय, ५. तंदुलवेयालिय, ६. चंदावेज्झय. ७. देविंदत्थय, ८. गणिविज्जा, ९. महापच्चक्खाण, १०. वीरत्थय, ११. इसिभासियाइं, १२. अजीवकप्प, १३. गच्छायार, १४. मरणसमाधि, १५. तित्थोगालि, १६. आराहणपडागा, १७. दीवसागरपण्णत्ति, १८. जोइसकरंडय, १९. अंगविज्जा, २०. सिद्धपाहुड, २१. सारावली, २२. जीवविभत्ति. इन प्रकीर्णकों के नामों में से नंदी-पाक्षिकसूत्र में उत्कालिक सूत्र-विभाग में देविंदत्थय, तंदुलवेयालिय, चंदावेज्झय, गणिविज्जा, मरणविभत्ति-मरणसमाहि, आउरपच्चक्खाण, महापच्चखाण ये सात नाम और कालिक विभाग में इसिभासियाइं, दीवसागरपण्णत्ति ये दो नाम इस प्रकार ९ नाम पाये जाते हैं. फिर भी चउसरण, आज का आउरपच्चक्खाण, भत्तपरिण्णा, संथारय और आराहणपडागा—इन प्रकीर्णकों को छोड़कर दूसरे प्रकीर्णक बहुत प्राचीन हैं, जिनका उल्लेख चूर्णिकारों ने अपनी चूर्णियों में किया है. तंदुलवेयालिय का उल्लेख अगस्त्यचूर्णि (पत्र ३) में है.

जैसे कर्मप्रकृति शास्त्र का कम्मपगडीसंगहणी नाम कहा जाता है, इसी प्रकार दीवसागरपण्णत्ति का दीवसागरपण्णत्ति-संग्रहणी यह नाम संभावित है.

श्वेतांबर मूर्तिपूजक वर्ग तित्थोगालिपइण्णय को प्रकीर्णकों की गिनती में शामिल करता है, किन्तु इस प्रकीर्णक में ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो श्वेताम्बरों को स्वप्न में भी मान्य नहीं हैं और अनुभव से देखा जाय तो उसमें आगमों के नष्ट होने का जो क्रम दिया है वह संगत भी नहीं है.

अंगविज्जापइण्णय एक फलादेश का ९००० श्लोक परिमित महत्त्व का ग्रंथ है. इसमें ग्रह-नक्षत्रादि या रेखादि लक्षणों के आधार पर फलादेश का विचार नहीं किया गया है, किन्तु मानव की अनेकविध चेष्टाओं एवं क्रियाओं के आधार पर फलादेश दिया गया है. एक तरह माना जाय तो मानसशास्त्र एवं अंगशास्त्र को लक्ष्य में रखकर इस ग्रंथ की रचना की गई है. भारतीय वाङ्मय में इस विषय का ऐसा एवं इतना महाकाय ग्रंथ दूसरा कोई भी उपलब्ध नहीं हुआ है.

आगमों की व्याख्या

ऊपर जिन जैन मूल आगमसूत्रों का संक्षेप में परिचय दिया गया है उनके ऊपर प्राकृत भाषा में अनेक प्रकार की व्याख्याएँ लिखी गई हैं. इनके नाम क्रमशः—निर्युक्ति, संग्रहणी, भाष्य, महाभाष्य; ये गाथाबद्ध-पद्यबद्ध व्याख्याग्रंथ हैं. और चूर्णि, विशेष चूर्णि एवं प्राचीन वृत्तियाँ गद्यबद्ध व्याख्याग्रंथ हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्युक्तियाँ—स्थविर आर्य भद्रबाहु स्वामी ने दस आगमों पर निर्युक्तियाँ रची हैं, जिनके नाम इन्होंने आवश्यक-निर्युक्ति में इस प्रकार लिखे हैं—

आवस्सयस्स १ दसकालियस्स २ तह उत्तरज्झ ३ मायारे ४।
सूयगडे णिज्जुत्तिं ५ वोच्छामि तहा दसाणं च ६॥
कप्पस्स य णिज्जुत्तिं, ववहारस्सेव परमनिउणस्स ८।
सूरियपण्णत्तीए ६ वोच्छं इसिभासियाणं च १०॥

इन गाथाओं में सूचित किया है तदनुसार इन्होंने दस आगमों की निर्युक्तियाँ रची थीं. आगमों की अस्तव्यस्त दशा, अनुयोग की पृथक्ता आदि कारणों से इन निर्युक्तियों का मूल स्वरूप कायम न रहकर आज इनमें काफी परिवर्तन और हानि-वृद्धि हो चुके हैं. इन परिवर्तित एवं परिवर्द्धित निर्युक्तिओं का मौलिक परिमाण क्या था ? यह समझना आज कठिन है. खास करके जिन पर भाष्य-महाभाष्य रचे गये उनका मिश्रण तो ऐसा हो गया है कि—स्वयं आचार्य श्री मलयगिरि को बृहत्कल्प की वृत्ति (पत्र १) में यह कहना पड़ा कि—'सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिर्भाष्यं चैको ग्रंथो जातः' और उन्होंने अपनी वृत्ति में निर्युक्ति-भाष्य को कहीं भी पृथक् करने का प्रयत्न नहीं किया है.

सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋषिभाषितसूत्र की निर्युक्तियाँ उपलब्ध नहीं हैं. उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, दशा इन आगमों की निर्युक्तियों का परिमाण स्पष्टरूप से मालूम हो जाता है आवश्यक, दशकालिक आदि की निर्युक्तियों का परि-माण भाष्यगाथाओं का मिश्रण हो जाने से निश्चित करना कठिन जरूर है, तथापि परिश्रम करने से इसका निश्चय हो सकता है किन्तु कल्प व व्यवहारसूत्र की निर्युक्तियों का परिमाण किसी भी प्रकार निश्चित नहीं किया जा सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि—चूर्णि-विशेष-चूर्णिकारों ने कहीं-कहीं 'पुरातनगाथा, निर्युक्तिगाथा' इत्यादि लिखा है, जिससे निर्युक्तिगाथाओं का कुछ ख्याल आ सकता है तो भी संपूर्णतया निर्युक्तिगाथाओं का विवेक या पृथक्करण करना मुश्किल ही है.

ऊपर जिन निर्युक्तिओं का उल्लेख किया है इनके अतिरिक्त ओघनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति और संसक्तनिर्युक्ति ये तीन निर्युक्तियाँ और मिलती हैं. इनमें से ओघनिर्युक्ति आवश्यकनिर्युक्ति में से और पिंडनिर्युक्ति दशवैकालिक निर्युक्ति में से अलग किये गये अंश हैं. संसक्तनिर्युक्ति बहुत बाद की एवं विसंगत रचना है.

स्थविर आर्य भद्रबाहुविरचित निर्युक्तियों के अलावा भाष्य और चूर्णियों में गोविंदनिज्जुत्ति का भी उल्लेख आता है, जो स्थविर आर्य गोविंद की रची हुई थी. आज इस निर्युक्ति का पता नहीं है. यह नष्ट हो गई या किसी निर्युक्ति में समाविष्ट हो गई ? यह कहा नहीं जा सकता. निशीथचूर्णि में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—"तेण एगिंदिय-जीवसाहणं **गोविन्दनिज्जुत्ती** कया" इनके अलावा और किसी निर्युक्तिकार का निर्देश नहीं मिलता है. निर्युक्तियों की रचना मूलसूत्रों के अंशों के व्याख्यान रूप होती है.

संग्रहणियां—संग्रहणियों की रचना पंचकल्प महाभाष्य के उल्लेखानुसार स्थविर आर्य कालक की है. पाक्षिकसूत्र में भी "ससुत्ते सअत्थे सगंथे सनिज्जुत्तिए ससंगहणिए" इस सूत्रांश में संग्रहणी का उल्लेख है. इससे भी प्रतीत होता है कि संग्रहणियों की रचना काफी प्राचीन है. आज स्पष्टरूप से पता नहीं चलता है कि—स्थविर आर्य कालक ने कौन से आगमों की संग्रहणियों की रचना की थी ? और उनका परिमाण क्या था ? तो भी अनुमान होता है कि—भगवती-सूत्र, जीवाभिगमोपांग, प्रज्ञापनासूत्र, श्रमणप्रतिक्रमणसूत्र आदि में जो संग्रणियाँ पाई जाती हैं वे ही ये हों. इससे अधिक कहना कठिन है.

भाष्य-महाभाष्य—जैन सूत्रों के भाष्य-महाभाष्यकार के रूप में दो क्षमाश्रमणों के नाम पाये जाते हैं—१ संघदास गणि क्षमाश्रमण और जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण. जैन आगमों के महाकाय भाष्य-महाभाष्य निम्नोक्त आठ प्राप्य हैं—१ विशे-षावश्यक महाभाष्य २ कल्पलघुभाष्य ३ कल्पबृहद्भाष्य ४ पंचकल्प ४ व्यवहार भाष्य ६ निशीथभाष्य ७ जीतकल्पभाष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८ ओघनिर्युक्ति महाभाष्य. कल्पलघुभाष्य एवं पंचकल्पमहाभाष्य के प्रणेता संघदासगणि क्षमाश्रमण हैं व विशेषावश्यक महाभाष्य के प्रणेता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण हैं. दूसरे भाष्य-महाभाष्यों के कर्त्ता कौन हैं, इसका पता अभी तक नहीं लगा है. संघदासगणि जिनभद्रगणि से पूर्ववर्ती हैं. श्रीजिनभद्रगणि महाभाष्यकार के नाम से लब्धप्रतिष्ठ हैं. जिन आगमों पर निर्युक्तियों की रचना है उनके भाष्य, मूल सूत्र व निर्युक्ति को लक्ष्य में रखकर रचे गये हैं. जिनकी निर्युक्तियाँ नहीं हैं उनके भाष्य सूत्र को ही लक्षित करके रचे गये हैं. उदाहरण रूप में जीतकल्पसूत्र और उसका भाष्य समझना चाहिए. महाभाष्य के दो प्रकार हैं—पहला प्रकार विशेषावश्यक महाभाष्य, ओघनिर्युक्ति महाभाष्य आदि हैं, जिनके लघुभाष्य नहीं हैं. वे सीधे निर्युक्ति के ऊपर ही स्वतंत्र महाभाष्य हैं. दूसरा प्रकार लघुभाष्य को लक्षित करके रचे हुए महाभाष्य हैं. इसका उदाहरण कल्पबृहद्भाष्य को समझना चाहिए. यह महाभाष्य अपूर्ण ही मिलता है. निशीथ और व्यवहार के भी महाभाष्य थे, ऐसा प्रघोष चला आता है, किन्तु आज वे प्राप्त नहीं हैं. निशीथमहाभाष्य के अस्तित्व का उल्लेख बृहट्टिप्पनिकाकार—प्राचीन ग्रंथसूचीकार ने अपनी सूची में भी किया है.

ऊपर जिन महाकाय भाष्य—महाभाष्य का परिचय दिया गया है उनके अलावा आवश्यक, ओघनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति, दशवैकालिक सूत्र आदि के ऊपर भी लघुभाष्य प्राप्त होते हैं, किन्तु इनका मिश्रण निर्युक्तियों के साथ ऐसा हो गया है कि कई जगह निर्युक्ति-भाष्यगाथा कौन-सी एवं कितनी हैं ? इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है. इनमें से भी जब मैंने आवश्यकसूत्र की चूर्णि और हारिभद्री वृत्ति को देखा तब तो मैं असमंजस में पड़ गया. चूर्णिकार कहीं भी 'भाष्यगाथा' नाम का उल्लेख नहीं करते हैं, जबकि आचार्य हरिभद्र स्थान-स्थान पर 'भाष्य और मूलभाष्य' के नाम से अवतरण देते हैं. आचार्य श्री हरिभद्र जिन गाथाओं को मूलभाष्य की गाथाएँ फरमाते हैं उनमें से बहुत-सी गाथाओं का उल्लेख उनपर चूर्णि-चूर्णिकार ने की ही नहीं है. यद्यपि उनमें से कई गाथाओं की चूर्णि पाई जाती है. फिर भी चूर्णिकार ने कहीं भी उन गाथाओं का 'मूल भाष्य' के रूप में उल्लेख नहीं किया है. प्रतीत होता है कि—आचार्य श्री हरिभद्र ने दशवैकालिकनिर्युक्ति की तरह इस वृत्ति में काफी गाथाओं का संग्रह कर लिया है.

चूर्णि—विशेष चूर्णि—आचारांग, सूत्रकृतांग, भगवती सूत्र, जीवाभिगम, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, प्रज्ञापनासूत्र, दशा, कल्प, व्यवहार, निशीथ, पंचकल्प, जीतकल्प, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, पिंडनिर्युक्ति, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार-अंगुलपदचूर्णि, श्रावकप्रतिक्रमण ईर्यापथिकी आदि सूत्र—इन आगमों की चूर्णियाँ अभी प्राप्त हैं. निशीथसूत्र की आज विशेष चूर्णि ही प्राप्त है. कल्प की चूर्णि-विशेषचूर्णि दोनों ही प्राप्त हैं. दशवैकालिकसूत्र की दो चूर्णियाँ प्राप्त हैं. एक स्थविर अगस्त्यसिंह की और दूसरी अज्ञातकर्तृक है. आचार्य श्री हरिभद्र ने इस चूर्णि का 'वृद्धविवरण' नाम दिया है. अनुयोगद्वार सूत्र में जो अंगुलपद है उस पर आचार्य श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने चूर्णि रची है. चूर्णिकार श्री जिनदास गणि महत्तर और आचार्य श्री हरिभद्र ने अपनी अनुयोगद्वारसूत्र की चूर्णि-वृत्ति में श्री जिनभद्र के नाम से इसी चूर्णि को अक्षरशः ले लिया है. ईर्यापथिकी सूत्रादि की चूर्णि के प्रणेता यशोदेवसूरि हैं, इसका रचनाकाल सं० ११७४ से ११८० का है. श्रावक प्रतिक्रमण चूर्णि श्री विजयसिंह सूरि की रचना है, जो वि० सं ११८२ की है.

ज्योतिष्करंडक प्रकीर्णक पर शिवनंदी वाचक विरचित 'प्राकृत वृत्ति' पाई जाती है, जो चूर्णि में शामिल हो सकती है. आम तौर से देखा जाय तो पिछले जमाने में प्राकृतवृत्तियों को 'चूर्णि' नाम दिया गया है. फिर भी ऐसे प्रकरण अपने सामने मौजूद हैं, जिनसे पता चलता है कि प्राचीन काल में प्राकृत व्याख्याओं को 'वृत्ति' नाम भी दिया जाता था. दशवैकालिकसूत्र के दोनों चूर्णिकारों ने अपनी चूर्णियों में प्राचीन दशवैकालिकव्याख्या का 'वृत्ति' के नाम से जगह जगह उल्लेख किया है.

ऊपर जिन चूर्णियों का उल्लेख किया गया है, उनमें से प्रायः बहुत-सी चूर्णियाँ महाकाय हैं। इन सब चूर्णियों के प्रणेताओं के नाम प्राप्त नहीं होते हैं, फिर भी स्थविर अगस्त्यसिंह शिवनंदि वाचक, जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, जिनदास महत्तर, गोपालिकमहत्तरशिष्य—इन चूर्णिकार आचार्यों के नाम मिलते हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूर्णि-निर्युक्तिओं की रचना पिछले जमाने में बंद हो गई, किन्तु संग्रहणी, भाष्य-महाभाष्य, चूर्णि की रचना का प्रचार बाद में भी चालू रहा है. संस्कृतवृत्तियों की रचना के बाद यद्यपि आगमों पर ऐसा कोई प्रयत्न नहीं हुआ है तो भी आगमों के विषयों को लेकर तथा छोटे-मोटे प्रकरणों पर भाष्य-महाभाष्य-चूर्णि लिखने का प्रयत्न चालू ही रहा है, यह आगे प्रकरणों के प्रसंग में मालूम होगा.

यहाँ पर जैन आगम और प्राकृत व्याख्याग्रन्थों का परिचय दिया गया है ये बहुत प्राचीन एवं प्राकृत भाषा के सर्वोत्कृष्ट अधिकारियों के रचे हुए हैं. प्राकृतादि भाषाओं की दृष्टि से ये बहुत ही महत्त्व के हैं.

प्रकरण

प्रकरण किसी खास विषय को ध्यान में रखकर रचे गये हैं. मेरी दृष्टि से प्रकरणों को तीन विभागों में विभक्त किया जा सकता है—तार्किक, आगमिक और औपदेशिक.

तार्किक प्रकरण—आचार्य श्रीसिद्धसेन का सन्मतितर्क, आचार्य श्रीहरिभद्र का धर्मसंग्रहणी प्रकरण, उपाध्याय श्री यशोविजयकृत श्रीपूज्यलेख, तत्त्वविवेक, धर्मपरीक्षा आदि का इस कोटि के प्रकरणों में समावेश होता है. यद्यपि ऐसे तार्किक प्रकरण बहुत कम हैं, फिर भी इन प्रकरणों का प्राकृत भाषा के अतिरिक्त तत्त्वज्ञान की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है.

आगमिक प्रकरण—आगमिक प्रकरणों का अर्थ जैन आगमों में जो द्रव्यानुयोग व गणितानुयोग के साथ संबन्ध रखने वाले विविध विषय हैं उनमें से किसी एक को पसंद करके उसका विस्तृतरूप में निरूपण करनेवाले या संग्रह करनेवाले ग्रंथ प्रकरण हैं. ऐसे प्रकरणों के रचनेवाले शिवशर्म, जिनभद्र क्षमाश्रमण, हरिभद्रसूरि, चन्द्रर्षि महत्तर, गर्गर्षि, मुनिचंद्रसूरि, सिद्धसेनसूरि, जिनवल्लभ गणि, अभयदेवसूरि, श्रीचन्द्रसूरि, चक्रेश्वरसूरि, देवेन्द्रसूरि सोमतिलकसूरि, रत्नशेखरसूरि, विजयविमलगणि आदि अनेक आचार्य हुए हैं. इनमें से आचार्य शिवशर्म, चन्द्रर्षि महत्तर, गर्गर्षि, जिनवल्लभगणि, देवेन्द्रसूरि आदि कर्मवादविषयक कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह, प्राचीन कर्मग्रंथ और नव्यकर्मग्रंथ शास्त्रों के प्रणेता हैं. इनमें भी शिवशर्मप्रणीत कर्मप्रकृति और चन्द्रर्षि प्रणीत पंचसंग्रह, व इनकी चूर्णि-वृत्तियाँ महाकाय ग्रंथ हैं. ये दो शास्त्र आगमकोटि के महामान्य ग्रंथ माने जाते हैं. इनके अलावा आचार्य जिनभद्रके संग्रहणी-क्षेत्रसमास-विशेषणवती, हरिभद्रसूरिके पंचाशक-विंशतिविंशिका पंचवस्तुक-उपदेशपद-श्रावकधर्मविधितंत्र-योगशतक-संबोधप्रकरण आदि, मुनिचन्द्रसूरि के अंगुलसप्तति, वनस्पतिसप्तति, आवश्यकसप्तति तथा संख्या बंध कुलक आदि, सिद्धसेनसूरि का १६०६गाथा परिमित प्रवचनसारोद्धारप्रकरण, अभयदेव सूरि के पंच निर्ग्रन्थी संग्रहणी, प्रज्ञापना तृतीय पदसंग्रहणी, सप्ततिकाभाष्य, षट्स्थानक भाष्य, नवतत्त्व भाष्य, आराधनाप्रकरण. श्रीचन्द्रसूरि का संग्रहणीप्रकरण, चक्रेश्वरसूरि के ११२३ गाथा परिमित शतकमहाभाष्य, सिद्धांतसारोद्धार, पदार्थस्थापना, सूक्ष्मार्थसप्तति, चरणकरणसप्तति, सभापंचक स्वरूप प्रकरण आदि, देवेन्द्रसूरि के देववंदनादि भाष्यत्रय, नव्यकर्मग्रंथपंचक, सिद्धदंडिका, सिद्धपंचाशिका आदि, सोमतिलकसूरि का नव्य बृहत्क्षेत्रसमासप्रकरण, रत्नशेखरसूरि के क्षेत्रसमास, गुरुगुण षट्त्रिंशिका आदि प्रकरण हैं। यहाँ मुख्य मुख्य प्रकरणकार आचार्यों के नाम और उनके प्रकरणों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। अन्यथा प्रकरणकार आचार्य और इनके रचे हुए प्रकरणों की संख्या बहुत बड़ी है. इनमें कितनेक प्रकरणों पर भाष्य, महाभाष्य और चूर्णियाँ भी रची गई हैं.

औपदेशिक प्रकरण— औपदेशिक प्रकरण वे हैं, जिनमें मानवजीवन की शुद्धि के लिए अनेकविध मार्ग दिखलाये गये हैं. ऐसे प्रकरण भी अनेक रचे गये हैं. आचार्य धर्मदास की उपदेशमाला, प्रद्युम्नाचार्य का मूलशुद्धिप्रकरण, श्री शान्तिसूरि का धर्मरत्नप्रकरण, देवेन्द्रसूरिका श्राद्धविधिप्रकरण, मलधारी हेमचन्द्रसूरि का भवभावना और पुष्पमाला प्रकरण, चन्द्रप्रभमहत्तर का दर्शनशुद्धिप्रकरण, वर्द्धमानसूरि का धर्मोपदेशमालाप्रकरण, यशोदेवसूरि का नवपदप्रकरण, आसड के उपदेशकंदली, विवेकमंजरी प्रकरण, धर्मघोषसूरि का ऋषिमंडल प्रकरण आदि बहुत से औपदेशिक छोटे-छोटे प्रकरण हैं, जिनपर महाकाय टीकायें भी रची गई हैं, जिनमें प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश भाषा में अनेक कथाओं का संग्रह किया गया है. एक रीति से माना जाय तो ये टीकाएं कथा-कोशरूप ही हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मकथा साहित्य

जैनाचार्यों ने प्राकृत कथासाहित्य के विषय में भी अपनी लेखनी का उपयोग काफी किया है. जैनाचार्यों ने काव्यमय कथाएं लिखने का प्रयत्न विक्रम संवत् प्रारम्भ के पूर्व ही शुरू किया है. आचार्य पादलिप्त की तरंगवती, मलयवती, मगधसेना संघदासगणि वाचक विरचित वसुदेवहिंडी, धूर्ताख्यान आदि कथाओं का उल्लेख विक्रम की पांचवीं छट्ठी सदी में रचे गए भाष्यों में आता है. धूर्ताख्यान तो निशीथचूर्णिकार ने अपनी चूर्णि में [गा० २९६ पत्र १०२-१०५] भाष्य गाथाओं के अनुसार संक्षेप में दिया भी है और आख्यान के अन्त में उन्होंने "सेसं धुत्तक्खाणगाणुसारेण णेयमिति" ऐसा उल्लेख भी किया है. इससे पता चलता है कि—प्राचीनकाल में 'धूर्ताख्यान' नामक व्यंसक कथाग्रन्थ था, जिसका आधार लेकर आचार्य श्रीहरिभद्र ने प्राकृत धूर्ताख्यान की रचना की है. प्राचीन भाष्य आदि में जिन कथा-ग्रन्थों का उल्लेख पाया जाता है उनमें से आज सिर्फ एक श्रीसंघदासगणि का वसुदेवहिंडी ग्रन्थ ही प्राप्त है, जो भी खण्डित है. दाक्षिण्याङ्क आचार्य श्रीउद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला कथा की [र० सं० शाके ७००] प्रस्तावना में पादलिप्त, शालवाहन, षट्पर्णक, गुणाढ्य विमलाङ्क, देवगुप्त, रविषेण, भवविरह हरिभद्र आदि के नामों के साथ उनकी जिन रचनाओं का निर्देश किया है उनमें से कुछ रचनाएं प्राप्त हैं, किन्तु पादलिप्त की तरंगवती, षट्पर्णक के सुभाषित आदि रचनाएं, गुणाढ्य की पिशाच भाषामयी बृहत्कथा, विमलाङ्क का हरिवंश, देवगुप्त का त्रिपुरुषचरित्र आदि कृतियाँ आज प्राप्त नहीं हैं. संघदास की वसुदेवहिंडी, धर्मसेन महत्तर का शौरसेनी भाषामय वसुदेव हिंडी द्वितीय खण्ड, विमलाङ्क का पउमचरिय, हरिभद्रसूरि की समराइच्चकहा, शीलाङ्क विमलमति का चउप्पन्न महापुरिसचरिय, भद्रेश्वर की कहावली आदि प्राचीन कथाएं आज प्राप्त हैं. ये सब रचनाएं विक्रम की प्रथम सहस्राब्दी में हुई हैं. इनके बाद में अर्थात् विक्रम की बारहवीं शताब्दी में चौवीस तीर्थंकरों के चरित्र आदि अनेक चरितों की रचना हुई है, जो अनुमानतः दो-तीन शताब्दियों में हुई है. वर्धमानसूरि—आदिनाथचरित्र और मणोरमा कहा, सोमप्रभाचार्य-सुमतिनाथ चरित और कुमारपालप्रतिबोध, गुणचंद्रसूरि अपरनाम देवभद्रसूरि-पार्श्वनाथचरित, महावीरचरिय और कहारयणकोस, लक्ष्मणगणि—सुपासनाहचरिय, बृहद्गच्छीय हरिभद्रसूरि—चन्द्रप्रभचरित्र और नेमिनाहचरिउ अपभ्रंश, देवसूरि—पद्मप्रभचरित, अजितदेवसूरि-श्रेयांसचरित, देवचन्द्रसूरि—शान्तिनाथचरित्र और मूलशुद्धिप्रकरणटीका, नेमिचन्द्रसूरि—अनन्तनाथचरित्र और महावीरचरित्र, श्रीचन्द्रसूरि—मुनिसुव्रतस्वामिचरित और कुंथुनाथचरित्र, पद्मप्रभसूरि-मुनिसुव्रतचरित्र, मलधारी हेमचन्द्रसूरि—अरिष्टनेमिचरित्र (भवभावनावृत्त्यन्तर्गत), रत्नप्रभसूरि-अरिष्टनेमिचरित, यशोदेवसूरि—चन्द्रप्रभचरित, चन्द्रप्रभोपाध्याय-वासुपूज्य-चरित्र, चन्द्रप्रभसूरि-विजयचन्द्रकेवलिचरित्र, शान्तिसूरि-पृथ्वीचन्द्रचरित्र, विजयसिंहसूरि—भुवनसुन्दरी कहा, धनेश्वर-सुरसुन्दरीकहा आदि प्राकृत कथा-चरितग्रन्थ प्रायः महाकाय ग्रन्थ हैं और विक्रम की ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में ही रचे गये हैं. इनके अतिरिक्त दूसरी भी दश श्रावक चरित, वर्द्धमानदेशना, शालिभद्रादि चरित, ऋषिदत्ताचरित, जिनदत्ताख्यान, कलावईचरिय, दवदंतीकहा, सुसढकहा, मणीवईचरिय, सणंकुमारचरिय, तरंगवती संक्षेप, सीयाचरिय, सिरिवालकहा, कुम्मापुत्तचरिय, मौन एकादशीकहा, जम्बूसामीचरिय, कालिकाचार्यकथा, सिद्धसेनाचार्यादि प्रबंध आदि अनेक छोटी-मोटी प्राकृत रचनाएं प्राप्त होती हैं. ये स्वतन्त्र साधुचरित स्त्री-पुरुष के कथाचरित होने पर भी इनमें प्रसंग-प्रसंग पर अवान्तर कथाएं काफी प्रमाण में आती हैं. इन महाकाय कथा-चरितों की तरह संक्षिप्त कथाचरित के संग्रहरूप महाकाय कथाकोशों की रचना भी बहुत हुई है. वे रचनाएं भद्रेश्वरसूरि की कहावली, जिनेश्वरसूरि का कथाकोश, नेमिचन्द्र-आम्रदेवसूरि का आख्यानकमणिकोश, धर्मघोष का ऋषिमण्डलप्रकरण, भरतेश्वर-बाहुबलि स्वाध्याय आदि हैं.

अपभ्रंश में श्वेताम्बर जैन संप्रदाय में महाकवि धनपाल का सत्यपुरमहावीरस्तोत्र, धाहिल का पउमसिरिचरिउ, जिनप्रभसूरि का वइरसामिचरिउ आदि छोटी-छोटी रचनाएं बहुत पाई जाती हैं, किन्तु बड़ी रचनाएं श्री सिद्धसेनसूरि अपरनाम साधारण कविकृत विलासवई कहा [ग्रं०३६२० रचना सं० ११२३] और हरिभद्रसूरि का नेमिनाहचरिउ [ग्रंथाग्र ८०३२ रचना सं० १२१६] ये दो ही देखने में आती हैं. आचार्य श्री हेमचन्द्र ने सिद्धहेमचन्द्र व्याकरण-अष्ट-

Jain Education International www.jainelibrary.org

माध्यम में प्राकृतादि भाषाओं के साथ अपभ्रंश भाषाओं को शामिल किया है फिर भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय में अपभ्रंश भाषा का प्रयोग विशेष नहीं हुआ है.

सामान्यतया श्वेताम्बर आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में सुभाषित और प्रसंगागत कथाओं के लिए इस भाषा का उपयोग किया है. मूलशुद्धिप्रकरणवृत्ति, भवभावनाप्रकरणवृत्ति, आख्यानकमणिकोशवृत्ति, उपदेशमाला दोघट्टिवृत्ति, कुमारपालप्रतिबोध आदि में अपभ्रंश कथाएं आती हैं, जो दो सौ—चार सौ श्लोक से अधिक परिमाण वाली नहीं होती है.

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में इससे विपरीत बात है. दिगम्बर आचार्यों ने धर्मकथाओं के लिए प्राकृत-मागध के स्थान में अपभ्रंश भाषा का ही विशेषरूप से उपयोग किया है. दिगम्बरसम्प्रदाय में शास्त्रीय ग्रन्थों के लिए प्राचीन आचार्यों ने शौरसेनीभाषा का बहुत उपयोग किया है. उन्होंने अतिमहाकाय माने जाएँ ऐसे धवल, जयधवल, महाधवल शास्त्रों की रचना की है. समयसार, पंचास्तिकाय आदि सैकड़ों शास्त्र भी शौरसेनी में लिखे गये हैं.

जैनस्तुति स्तोत्रादि

जैनाचार्यों ने स्तुति-स्तोत्रादि साहित्य काफी लिखा है. फिर भी प्रमाण की दृष्टि से देखा जाय तो प्राकृत भाषा में वह बहुत ही कम है. आचार्य पादलिप्त, आचार्य अभयदेव, देवभद्रसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनवल्लभ आदि का समग्र स्तुति-स्तोत्रादि साहित्य एकत्र किया जाय तो मेरा अनुमान है कि वह दो-चार हजार श्लोकों से अधिक नहीं होगा. इन स्तोत्रों में यमक, समसंस्कृत प्राकृत, षड्भाषामय स्तोत्रों का समावेश कर लेना चाहिए.

व्याकरण व कोश

प्राकृतादि भाषाओं के व्याकरणों एवं देशी आदि कोशों का विस्तृत परिचय प्राकृत भाषा के पारंगत डॉ० पिशल ने अपने 'कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ दी प्राकृत लेंग्वेजेज' ग्रन्थ में पर्याप्त मात्रा में दिया है अतः मैं विशेष कुछ नहीं कहता हूं. इस युग में महत्त्वपूर्ण चार प्राकृत शब्दकोश जैन विद्वानों ने तैयार किये हैं.

१. त्रिस्तुतिक आचार्य श्री राजेन्द्रसूरि का अभिधानराजेन्द्र
२. पंडित हरगोविंददास का पाइयसद्दमहण्णवो
३. स्थानकवासी मुनिश्री रत्नचन्द्रजी का पांच भागों में प्रकाशित अर्धमागधी कोश
४. श्री सागरानन्दसूरि का अल्पपरिचित सैद्धान्तिक शब्दकोश

काव्य और सुभाषित

प्राकृत भाषा में रचित प्रवरसेन के सेतुबंध महाकाव्य, वाक्पतिराज के गउडवहो, हेमचन्द्र के प्राकृत द्व्याश्रय महाकाव्य आदि से आप परिचित हैं ही. सेतुबंध महाकाव्य का उल्लेख निशीथ सूत्र की चूर्णि में भी पाया जाता है. महाकवि धनपाल ने (वि० ११वीं शती) अपनी तिलकमंजरी आख्यायिका में सेतुबंध महाकाव्य व वाक्पतिराज के गउडवहो की स्तुति—

जितं **प्रवरसेनेन** रामेणेव महात्मना, तरत्युपरि यत् कीर्तिसेतुर्वाङ्मयवारिधेः ।
दृष्ट्वा **वाक्पतिराजस्य** शक्ति **गौडवधोद्धुराम्**, बुद्धिः साध्वसरुद्धेव वाचं न प्रतिपद्यते ।।३१।।

इन शब्दों में की है. इसी कवि ने अपनी इस आख्यायिका में—

प्राकृतेषु प्रबन्धेषु रसनिःष्यन्दिभिः पदैः ।
राजन्ते जीवदेवस्य वाचः पल्लविता इव ।।२४।।

इस प्रकार आचार्य जीवदेव की प्राकृत कृति का उल्लेख किया है जो आज उपलब्ध नहीं है.

आचार्य दाक्षिण्यांक श्रीउद्योतनकी कुवलयमालाकहा प्राकृत महाकाव्य की सर्वोत्कृष्ट रसपूर्ण रचना है.

Jain Education International · For Private & Personal Use Only · www.jainelibrary.org

हाल कवि की गाथासप्तशती, वज्जालग्ग आदि को सभी जानते हैं. इसी प्रकार लक्ष्मण कवि का गाथाकोश भी उपलब्ध है. समयसुन्दर का गाथाकोश भी मुद्रित हो चुका है. बृहट्टिप्पनिकाकार ने "सुधाकलशाख्यः सुभाषितकोशः पं० रामचन्द्र कृतः" इस प्रकार श्रीहेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र के सुभाषितकोश का नामोल्लेख किया है जो आज अलभ्य है.

ऊपर जिन कथा-चरितादि ग्रंथों के नाम दिये हैं उन सबमें सुभाषितों की भरमार है. यदि इन सबका विभागशः संग्रह और संकलन किया जाय तो प्राकृत भाषा का अलंकार स्वरूप एक बड़ा भारी सुभाषित भण्डार तैयार हो सकता है.

अलंकारशास्त्र

जैसलमेर के श्री जिनभद्रीय ताडपत्र ज्ञानभडार में प्राकृत भाषा में रचित **अलंकारदर्पण** नामक एक अलंकार ग्रंथ है जिसके प्रारंभ में ग्रंथकार ने :—

सुंदरपयविण्णासं विमलालंकाररेहिअसरीरं ।
सुइदेविअं च कव्वं च पणविअं पवरवण्णड्ढं ।।३।।

इस आर्या में 'श्रुतदेवता' को प्रणाम किया है. इससे प्रतीत होता है कि—यह किसी जैनाचार्य की कृति है. इसका प्रमाण १३४ आर्या हैं तथा यह हस्तप्रति विक्रम की तेरहवीं शताब्दी पूर्वार्ध में लिखी प्रतीत होती है.

नाटक व नाट्य शास्त्र

राजा आदि उच्च वर्ग के व्यक्तियों को छोड़ कर नाटकों में शेष सभी पात्र प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं. यदि हिसाब लगाया जाय तो पता लगेगा कि— सब मिलाकर नाटकों में संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत अधिक नहीं तो कम भी प्रयुक्त नहीं हुई है. अतएव प्राकृत भाषा के साहित्य की चर्चा में नाटकों को भुलाया नहीं जा सकता. स्वतंत्ररूप से लिखे गये नाटकों से तो आप परिचित हैं ही, किंतु कथाग्रंथों के अन्तर्गत जो नाटक आये हैं उन्हीं की विशेष चर्चा यहाँ अभीष्ट है. प्रसंगवशात् यह भी कह दूँ कि—आवश्यकचूर्णि में प्राचीन जैन नाटकों के होने का उल्लेख है. शीलांक के चउप्पन्न-महापुरिसचरियं में (वि० १० वीं शती) विबुधानंद नामक एकांकी नाटक है. देवेन्द्रसूरि ने चन्द्रप्रभचरित में वज्रायुध नाटक लिखा है. आचार्य भद्रेश्वर ने कहावली में व देवेन्द्रसूरि ने कहारयणकोस में नाटकाभास नाटक दिये हैं. ये सब कथाचरितान्तर्गत नाटक हैं.

स्वतंत्र नाटकों की रचना भी जैनाचार्यों ने काफी मात्रा में की है. आचार्य देवचंद्र के चंद्रलेखाविजयप्रकरण, विलासवती नाटिका और मानमुद्राभंजन ये तीन नाटक हैं. मानमुद्राभंजन अभी अप्राप्य है. यशश्चन्द्र का मुद्रित कुमुदचंद्र और राजीमती नाटिका, यशःपालका मोहराजपराजय, जयसिंह सूरि का, हम्मीरमदमर्दन, रामभद्र का प्रबुद्धरौहिणेय, मेघप्रभ का धर्माभ्युदय व बालचंद्र का करुणावज्रायुध नाटक प्राप्त हैं. रामचंद्रसूरि के कौमुदीमित्राणंद नलविलास, निर्भयभीमव्यायोग, मल्लिकामकरंद, रघुविलास व सत्य हरिश्चन्द्र नाटक उपलब्ध हैं; राघवाभ्युदय, यादवाभ्युदय, यदुविलास आदि अनुपलब्ध हैं. इन्होंने नाटकों के अलावा नाट्यविषयक स्वोपज्ञटीकायुक्त नाट्यदर्पण की भी रचना की है. इसके प्रणेता रामचंद्र व गुणचंद्र दो हैं. इन दोनों ने मिलकर स्वोपज्ञटीकायुक्त द्रव्यालंकार की भी रचना की है. नाट्यदर्पण के अतिरिक्त रामचंद्र का नाट्यशास्त्रविषयक 'प्रबंधशत' नामक अन्य ग्रंथ भी था जो अनुपलब्ध है. यद्यपि बहुत से विद्वान् 'प्रबंधशत' का अर्थ 'चिकीर्षित सौ ग्रंथ' ऐसा करते हैं किन्तु प्राचीन ग्रंथसूची में "रामचंद्रकृतं प्रबन्धशतं द्वादशरूपकनाटकादिस्वरूपज्ञापकम्" ऐसा उल्लेख मिलता है. इससे ज्ञात होता है कि 'प्रबंधशत' नामकी इनकी कोई नाट्यविषयक रचना थी.

इनके अतिरिक्त ज्योतिष, रत्नपरीक्षा शास्त्र, अंगलक्षण, आयुर्वेद आदि विषयक प्राकृत ग्रंथ मिलते हैं. आयुर्वेदविषयक एक प्राकृत ग्रंथ मेरे संग्रह में है जिसका नाम 'योगनिधान' है. पं० अमृतलाल के संग्रह में प्राकृतभाषा में रचित कामशास्त्र का 'मयणमउड' नामक ग्रंथ भी है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ पर मैंने आगम और उनकी व्याख्या से प्रारंभ कर विविध विषयों के महत्त्वपूर्ण प्राकृत वाङ्मय का अतिसंक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया है. इससे आपको पता लगेगा कि—प्राकृत भाषा में कितना विस्तृत एवं विपुल साहित्य है और विद्वानों ने इस भाषा को समृद्ध करने के लिए क्या क्या नहीं लिखा ? अपने-अपने विषय की दृष्टि से तो इस समग्र साहित्य का मूल्य है ही, किन्तु इस वाङ्मय में जो सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विपुल सामग्री भरी पड़ी है, उसका पता सटीक बृहत्कल्पसूत्र, निशीथचूर्णि, अंगविज्जा, चउपन्न महापुरिसचरियं आदि के परिशिष्टों को देखने से लग सकता है. प्राकृत भाषा और उसके सर्वांगीण कोश की सामग्री इस वाङ्मय में से ही पर्याप्तमात्रा में प्राप्त हो सकती है. पूर्वोक्त प्राकृत कोशों में नहीं आये हुए हजारों शब्द इस वाङ्मय से प्राप्त हो सकते हैं. इसी तरह आचार्य हेमचंद्र की 'देसी नाममाला' में असंग्रहीत सैकड़ों देशी शब्द इस वाङ्मय में दिखाई देते हैं. इसके लिए विद्वानों को इसी वर्ष प्रकाशित डॉ० ए० एन० उपाध्ये द्वारा संपादित प्राकृत कुवलयमाला एवं पं० अमृतलाल भोजक द्वारा संपादित 'चउपन्नमहापुरिसचरियं' की प्रस्तावना एवं शब्दकोशों का परिशिष्ट देखना चाहिए. मेरा मत है कि—भविष्य में प्राकृत भाषा के सर्वांगीण कोश के निर्माताओं को यह समग्र वाङ्मय देखना होगा. यही नहीं अपितु संस्कृत भाषा के कोश के निर्माताओं को भी यह वाङ्मय देखना व शब्दों का संग्रह करना अति आवश्यक है. इसका कारण यह है कि—प्राकृत व संस्कृत भाषा को अपनाने वाले विद्वानों का चिरकाल से अति नैकट्य रहा है. इतना ही नहीं अपितु जो प्राकृत वाङ्मय के निर्माता रहे हैं वे ही संस्कृत वाङ्मय के निर्माता भी रहे हैं. अतः दोनों कोशकारों को एक-दूसरा साहित्य देखना आवश्यक है. अन्यथा दोनों कोश अपूर्ण ही होंगे.

इस आगमादि साहित्य से विद्वानों को आन्तरिक व बाह्य अथवा व्यावहारिक व पारमार्थिक जीवन के साथ संबंध रखने वाले अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है. यद्यपि भारतीय आर्य ऋषि, मुनि एवं विद्वानों का मुख्य आकर्षण हमेशा धार्मिक साहित्य की ओर ही रहा है तथापि इनकी कुशलता यही है कि—इन्होंने लोकमानस को कभी भी नहीं ठुकराया. इसीलिए इन्होंने प्रत्येक विषय को लेकर साहित्य का निर्माण किया है. साहित्य का कोई अंग इन्होंने छोड़ा नहीं है. इतना ही नहीं अपितु अपनी धर्मकथाओं में भी समय-समय पर साहित्य के विविध अंगों को याद किया है. यही कारण है कि—अपनी प्राचीन धर्मकथाओं में धार्मिक सामग्री के अतिरिक्त लोकव्यवहार को स्पर्श करने वाले अनेक विषय प्राप्त होते हैं. उदाहरण के तौर पर कथा-साहित्य में राजनीति, रत्नपरीक्षा, अंगलक्षण, स्वप्नशास्त्र, मृत्युज्ञान आदि अनेक विषय आते हैं. पुत्र-पुत्रियों को पठन, विवाह, अधिकारप्रदान, परदेशगमन आदि अनेक प्रसंगों पर शिक्षा, राजकुमारों को युद्धगमन, राज्यपदारोहण आदि प्रसंगों पर हितशिक्षा, पुत्र-पुत्रियों के जन्मोत्सव, झुलाने, विवाह आदि करने का वर्णन, ऋतुवर्णन, वनविहार, अनंगलेख, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अलंकारशास्त्र, साहित्यचर्चा आदि विविध प्रसंग; साहूकारों का वाणिज्य-व्यापार, उनकी पद्धति, उनके नियम, भूमि व समुद्र में वाणिज्य के लिए जाना, भूमि व समुद्र के वाहन, व जहाज के प्रकार, तद्विषयक विविध सामग्री, जीवन के सद्गुण-दुर्गुण, नीति-अनीति, सदाचार-दुराचार आदि का वर्णन-इत्यादि सैकड़ों विषयों का इस साहित्य में वर्णन है. ये सभी सांस्कृतिक साधन हैं.

वसुदेव हिंडी प्रथम खंड (पत्र १४५) में चारुदत्त के चरित में चारुदत्त की स्थल संबंधी व सामुद्रिक व्यापारिक यात्रा का अतिरसिक वर्णन है जिसमें देश-विदेशों का परिभ्रमण; सूत्रकृतांग की मार्गाध्ययन-निर्युक्ति में (गा० १०२) वर्णित शंकुपथ, अजपथ, लतामार्ग आदि का निर्देश किया गया है. इसमें यात्रा के साधनों का भी निर्देश है. परलोकसिद्धि, प्रकृति-विचार, वनस्पति में जीवत्व की सिद्धि, मांसभक्षण के दोष आदि अनेक दार्शनिक धार्मिक विषय भी पाये जाते हैं. इसी वसुदेवहिंडी के साथ जुड़ी हुई धम्मिल्लहिंडी में "**अत्थसत्थे** य भणियं—'विसेसेण मायाए सत्थेण य हंतव्वो अप्पणो विवड्ढमाणो सत्तु' त्ति" (पृ० ४५) ऐसा उल्लेख आता है जो बहुत महत्त्व का है. इससे सूचित होता है कि—प्राचीन युग में अपने यहाँ प्राकृत भाषा में रचित अर्थशास्त्र था. श्रीद्रोणाचार्य ने ओघनिर्युक्ति में "**चाणक्कए** वि भणियं—'जइ काइयं न वोसिरइ तो अदोसो' त्ति" (पत्र १५२-२) ऐसा उल्लेख किया है. यह भी प्राकृत अर्थशास्त्र होने की साक्षी देता है, जो आज प्राप्त नहीं है. इसी ग्रंथ में पाकशास्त्र का उल्लेख भी है जिसका नाम **पोरागमसत्थ** दिया है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज के युग में प्रसिद्ध प्रिन्स ऑफ वेल्स, क्विन मेरी, ट्युटानिया आदि जहाजों के समान युद्ध,विनोद, भोग आदि सब प्रकार की सामग्री से संपन्न राजभोग्य एवं धनाढ्यों के योग्य समृद्ध जहाजों का वर्णन प्राकृत श्रीपालचरित आदि में मिलता है. रत्नप्रभसूरिविरचित नेमिनाथचरित में अलंकारशास्त्र की विस्तृत चर्चा आती है. प्रहेलिकाएं, प्रश्नोत्तर, चित्रकाव्य आदि का वर्णन तो अनेक कथाग्रंथों में पाया जाता है. श्रावकप्रतिक्रमणसूत्र की अर्थदीपिका वृत्ति में (पृ० १२७) मंत्रीपुत्रीकथानक में किसी वादी ने मंत्रीपुत्री को ५६ प्रश्नों का उत्तर प्राकृत भाषा में चार अक्षरों में देने का वादा किया है. मंत्रीपुत्री ने भी 'परवाया' इन चार अक्षरों में उत्तर दिया है. ऐसी क्लिष्टातिक्लिष्ट पहेलियाँ भी इन कथाग्रंथों में पाई जाती हैं.

संक्षेप में कहना यही है कि—प्राकृत के इस वाङ्मय में विपुल ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सामग्री मिल सकती है. यदि इसका पृथक्करण किया जाय तो बहुत महत्त्व की सामग्री एकत्र हो सकती है.

प्राकृतादि भाषाएं

जहाँ आज तक पाश्चात्य और एतद्देशीय विद्वानों ने प्राकृत भाषा के विषय में पर्याप्त विचार किया हो, विशेषतः प्राकृतादि भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० पिशल महाशय ने वर्षों तक इन भाषाओं का अध्ययन करके और चारों दिशाओं के तत्तद्विषयक सैकड़ों ग्रन्थों का अवलोकन, अध्ययन, परिशीलन, चिन्तन आदि करके प्राकृत आदि भाषाओं का महाकाय व्याकरण तैयार किया हो वहाँ इस विषय में कुछ भी कहना एक दुस्साहस ही है. मैं कोई प्राकृतादि भाषाओं का पारप्राप्त विद्वान् नहीं हूँ, फिर भी प्राकृत आदि भाषा एवं साहित्य के अभ्यासी विद्यार्थी की हैसियत से मुझे जो तथ्य प्रतीत हुए हैं उनको मैं आपके सामने रखता हूँ.

प्राकृत आदि भाषाओं के विद्वानों ने १ प्राचीन व्याकरण २ प्राचीन ग्रन्थों में आने वाले प्राकृत भाषा के संक्षिप्त लक्षण और ३ प्राचीन ग्रन्थों में आने वाले प्राकृत भाषाओं के प्रयोगों को ध्यान में रख कर प्राकृतादि भाषाओं के विषय में जो विचार और निर्णय किया है वह पर्याप्त नहीं है. इसके कारण ये हैं—

१. व्याकरणकारों का उद्देश्य भाषा को नियमबद्ध करने का होता है, अतः वे अपने युग के प्रचलित सर्वमान्य तत्तद् भाषाप्रयोगों एवं तत्संवादी प्राचीन मान्य ग्रन्थों के प्रयोगों की अपनी दृष्टि से तुलना करके व्याकरण का निर्माण करते हैं. खास कर उनकी दृष्टि अपने युग की ओर ही रहती है. आज के व्याकरणों को देख कर हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं. अतः इन व्याकरणों से प्राचीन युग की भाषा का पूर्ण पता लगाना असंभव है.

२. प्राचीन व्याख्याग्रन्थ आदि में अर्धमागधी आदि के जो एक-दो पंक्तियों में लक्षण पाये जाते हैं उनसे भी प्राकृत भाषाओं के वास्तविक स्वरूप का पता लगाना पर्याप्त नहीं है. डॉ० पिशल ने अर्धमागधी और मागधी के विषय में जैन व्याख्याकारों के अनेक उल्लेखों को दे कर प्रमाणपुरस्सर विस्तृत चर्चा की है. उसमें मैं इतनी पूर्ति करता हूँ कि—स्वर-व्यञ्जनों के परिवर्तन और विभक्तिप्रयोग आदि के अतिरिक्त तत्कालीन भिन्न-भिन्न प्रान्तीय (जहाँ भगवान् महावीर और उनके निर्ग्रन्थों ने विहार, धर्मोपदेश आदि किया था) शब्दों का स्वीकार या मिश्रण भी अर्धमागधी का लक्षण होने की सम्भावना है. जैन निर्ग्रन्थों को विहार-पादभ्रमण, भिक्षा, धर्मोपदेश, तत्तत्प्रान्तीय शिष्य-प्रशिष्यों के अध्ययन-अध्यापन आदि के निमित्त तत्तद्देशीय जनता के संपर्क में रहना पड़ता है. अतः इनकी भाषा में सहज ही भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं के स्वर-व्यञ्जनपरिवर्तन, विभक्ति-कारक आदि के प्रयोगों के साथ प्रान्तीय शब्दप्रयोग भी आ जाते हैं. भाषा का इस प्रकार का प्रभाव प्राचीन युग की तरह आज के जैन निर्ग्रन्थों की भाषा में भी देखा जाता है. जैन आगमों के निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि आदि में अनेक स्थानों पर एकार्थक शब्द दिये जाते हैं और वहाँ कहा भी जाता है कि—"भिन्न-भिन्न देशों में रहने वाले शिष्यों को मतिभ्रम न हो इसलिए एकार्थक शब्द दिये हैं". इस उल्लेख से भी यही प्रतीत होता है कि—अर्धमागधी का स्वर-व्यञ्जनादि परिवर्तन आदि के अतिरिक्त 'तत्तत्प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का संग्रह' यह भी एक प्रमुख लक्षण है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. वास्तव में प्राकृत भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थ ही इन भाषाओं के पृथक्करण के लिये अकाट्य साधन हैं और सचमुच ही उपर्युक्त दो साधनों की अपेक्षा यह साधन ही अतिउपयुक्त साधन है. इसका उपयोग डॉ० पिशल आदि विद्वानों ने अतिसावधानी से किया भी है, तथापि मैं मानता हूँ कि वह अपर्याप्त है. क्योंकि डॉ० पिशल आदि ने जिस विशाल साहित्य का उपयोग किया है वह प्रायः अर्वाचीन प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया साहित्य था जिसमें भाषा के मौलिक स्वरूप आदि का काफी परिवर्तन हो गया है. इसी साहित्य की प्राचीन प्रतियों को देखते हैं तब भाषा और प्रयोगों का महान् वैलक्षण्य नजर आता है. खुद डॉ० पिशल महाशय ने भी इस विषय का उल्लेख किया है. दूसरी बात यह है कि—डॉ० पिशल आदि विद्वानों ने ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर जिनमें प्राकृत भाषाप्रवाहों के मौलिक अंश होने की अधिक संभावना है और जो प्राकृत भाषाओं के स्वरूपनिर्णय के लिये अनिवार्य साधन की भूमिकारूप हैं ऐसे प्राचीनतम जैन आगमों का जो प्राचीन प्राकृतव्याख्या साहित्य है उसका उपयोग बिलकुल किया ही नहीं है. ऐसा अति प्राचीन श्वेतांबरीय प्राकृत व्याख्यासाहित्य जैन आगमों की निर्युक्ति-भाष्य-महाभाष्य-चूर्णियाँ हैं और इतर साहित्य में कुवलयमालाकहा, वसुदेवहिंडी, चउप्पन्नमहापुरिसचरियं आदि हैं. तथा दिगंबरीय साहित्य में धवल, जयधवल, महाधवल, तिलोयपण्णत्ती आदि महाशास्त्र हैं. यद्यपि दिगंबर आचार्यों के ग्रन्थ ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर श्वेतांबर जैन आगमादि ग्रन्थों की अपेक्षा कुछ अर्वाचीन भी हैं तथापि प्राकृत भाषाओं के निर्णय में सहायक जरूर हैं. मुझे तो प्रतीत होता है कि—प्राकृत भाषाओं के विद्वानों को प्राकृत भाषाओं को व्यवस्थित करने के लिये डॉ० पिशल के प्राकृतव्याकरण की भूमिका के आधार पर पुनः प्रयत्न करना होगा.

यहाँ पर जिस निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-कथाग्रन्थ आदि श्वेतांबर-दिगंबर साहित्य का निर्देश किया है वह अतिविस्तृत प्रमाण में है और इसके प्रणेता स्थविर केवल धर्मतत्त्वों के ही ज्ञाता थे ऐसा नहीं किन्तु वे प्राकृत भाषाओं के भी उत्कृष्ट ज्ञाता थे. प्राचीन प्राकृत भाषाओं की इनके पास मौलिक विरासत भी थी.

जैन आगमों की मौलिक भाषा अर्धमागधी कही जाती है. उसके स्वरूप का पता लगाना आज शक्य नहीं है. इतना ही नहीं किन्तु वल्लभी में आगमों का जो अन्तिम व्यवस्थापन हुआ उस समय भाषा का स्वरूप क्या था, इसका पता लगाना भी आज कठिन है. इसका कारण यह है कि—आज हमारे सामने उस समय की या उसके निकट के समय की जैन आगमों की एक भी प्राचीन हस्तप्रति विद्यमान नहीं है. इस दशा में भी आज हमारे सामने आचाराङ्ग, सूत्रकृतांग, दशवैकालिक आदि आगमों की चूर्णियां और कुछ जैन आगमों के भाष्य-महाभाष्य ऐसे रह गये हैं जिनके आधार पर वलभीपुस्तकालेखन के युग की भाषा और उसके पहले के युग की भाषा के स्वरूप के निकट पहुँच सकते हैं. क्योंकि इन चूर्णियों में मूलसूत्रपाठ को चूर्णिकारों ने व्याख्या करने के लिये प्रायः अक्षरशः प्रतीकरूप से उद्धृत किया है, जो भाषा के विचार और निर्णय के लिये बहुत उपयोगी है. कुछ भाष्य महाभाष्य और चूर्णियाँ ऐसी भी आज विद्यमान हैं जो अपने प्राचीन रूप को धारण किये हुए हैं. वे भी भाषा के विचार और निर्णय के लिये उपयुक्त हैं. इसके अतिरिक्त प्राचीन चूर्णि आदि व्याख्याग्रन्थों में उद्धरणरूप से उद्धृत जैन आगम और सन्मति, विशेषणवती, संग्रहणी आदि प्रकरणों के पाठ भी भाषा के विचार के लिये साधन हो सकते हैं.

आचार्य श्री हेमचन्द्र ने प्राचीन प्राकृतव्याकरण एवं प्राचीन प्राकृत वाङ्मय का अवलोकन करके और देशी धातुप्रयोगों का धात्वादेशों में संग्रह करके जो अतिविस्तृत सर्वोत्कृष्ट प्राकृत भाषाओं के व्याकरण की रचना की है वह अपने युग के प्राकृत भाषा के व्याकरण और साहित्यिक भाषाप्रवाह को लक्ष्य में रखकर ही की है. यद्यपि उसमें कहीं-कहीं जैन आगमादि साहित्य को लक्ष्य में रखकर कुछ प्रयोगों आदि की चर्चा की है तथापि वह बहुत ही अल्प प्रमाण में है. इस बात का निर्देश मैंने साराभाई नवाब-अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित कल्पसूत्र की प्रस्तावना में [पृ० १४-१५] किया भी है. आचार्य श्रीहेमचन्द्र ने जैन आगम आदि की भाषा और प्रयोगों के विषय में विशेष कुछ नहीं किया है तो भी उन्होंने अपने व्याकरण में जैन आगमों के भाष्य आदि में आनेवाले कुछ व्यापक प्रयोगों का और युष्मद्-अस्मद् आदि शब्दों एवं धातुओं के रूपों का संग्रह जरूर कर लिया है. डॉ० पिशल ने कई रूप नहीं मिलने का अपने व्याकरण में निर्देश किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है उनमें से बहुत से रूप और प्रयोग जैन आगमों की भाष्य-चूर्णियों में नजर आते हैं. इस दृष्टि से प्राकृत भाषाओं के विद्वानों को ये ग्रन्थ देखना अत्यावश्यक है. इन ग्रन्थों में कई प्रकार के स्वर-व्यञ्जन के विकार वाले प्रयोग, नये-नये शब्द एवं धातु, नये-नये शब्द-धातुओं के रूप, आज के व्याकरणों से सिद्ध न होनेवाले आर्ष प्रयोग और नये-नये देशी-शब्द पाये जाते हैं जिनका उल्लेख पिशल के व्याकरण में नहीं हुआ है. व्याकरण, देशीनाममाला आदि शास्त्र रचने वालों की अमुक निश्चित मर्यादा होती है, इस पर से उनके जमाने में अमुक शब्द, धातुप्रयोग आदि नहीं थे या उनके खयाल में अमुक नहीं आया था, यह कहना या मान लेना संगत नहीं. डॉ० पिशल ने 'खंभ' शब्द का निष्पादन वेद में आनेवाले 'स्कंभ' शब्द से किया है. इस विषय में पिशल के व्याकरण के हिंदी अनुवाद के आमुख में श्रीयुक्त जोषी जी ने 'प्राकृत वैयाकरणों को इस बात का पता नहीं लगा' इत्यादि लिखा है, यह उनका पिशल के व्याकरण का हिंदी अनुवाद करने के आनन्द का भावावेश मात्र है. हमेशा युग-युग में साहित्यनिर्माण का अलग-अलग प्रकार का तरीका होता है. उसके अनुसार ही साहित्य की रचना होती है. आज का युग ऐतिहासिक परीक्षण को आधारभूत मानता है, प्राचीन युग साम्प्रदायिकता को आधारभूत मानकर चलता था. आज के युग के साधन व्यापक एवं सुलभ हैं; प्राचीन युग में ऐसा नहीं था. इन बातों को ध्यान में रखा जाय तो वह युग और उस युग के साहित्य के निर्माता लेश भी उपालम्भ या आक्षेप के पात्र नहीं हैं. अगर देखा जाय तो साधनों की दुर्लभता के युग में प्राचीन महर्षि और विद्वानों ने कुछ कम कार्य नहीं किया है. पिशल के व्याकरण के हिंदी अनुवादक श्रीयुक्त जोषीजी को पाश्चात्य और एतद्देशीय विद्वानों की विपुल विचारसामग्री में से प्राकृत भाषाओं के सम्बन्ध में ज्ञातव्य कोई लेखादि नजर में नहीं आया, सिर्फ उनकी नजर में विदुषी श्रीमती डोल्ची नित्ति के ग्रन्थ का आचार्य श्री हेमचन्द्र एवं डॉ० पिशल के व्याकरण की अतिकटु टीका जितना अंश ही नजर में आया है जिसका सारा का सारा हिन्दी अनुवाद आमुख में उन्होंने भर दिया है जो पिशल के व्याकरण के साथ असंगत है. एक ओर जोषीजी स्वयं डॉ० पिशल को प्राकृतादि भाषाओं के महर्षि आदि विशेषण देते हैं और दूसरी ओर डोल्ची नित्ति के लेख का अनुवाद देते हैं जो प्राकृत भाषा के विद्वानों को समग्रभाव से मान्य नहीं है, यह बिलकुल असंगत है. एक दृष्टि से ऐसा कहा जा सकता है कि—श्रीयुक्त जोशीजी ने ऐसा निकृष्ट कोटि का आमुख, जिसमें आप प्राकृत भाषाओं के विषय में ज्ञातव्य एक भी बात लिख नहीं पाये हैं,—लिख कर अपने पाण्डित्यपूर्ण अनुवाद को एवं इस प्रकाशन को दूषित किया है.

डॉ० पिशल का 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' जिसका हिन्दी अनुवाद डॉ० हेमचन्द्र जोषी डी० लिट् ने किया है और जो 'बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्' की ओर से प्रकाशित हुआ है, उसमें अनुवादक और प्रकाशकों ने बहुत अशुद्ध छपने के लिये खेद व्यक्त किया है और विस्तृत शुद्धिपत्र देने का अनुग्रह भी किया है तो भी परिषद् के मान्य कुशल नियामकों से मेरा अनुरोध है कि ६८ पन्नों का शुद्धिपत्र देने पर भी प्राकृत प्रयोग और पाठों में अब भी काफी अशुद्धियाँ विद्यमान हैं, खास कर जैन आगमों के प्रयोगों और पाठों की तो अनर्गल अशुद्धियाँ रही हैं. इनका किसी जैन आगमज्ञ और प्राकृत भाषाभिज्ञ विद्वान से परिमार्जन विना कराये इसका दूसरा संस्करण न निकाला जाय. शब्दों की सूची को कुछ विस्तृत रूप दिया जाय एवं ग्रन्थ और ग्रन्थकारों के नामों के परिशिष्ट भी साथ में दिये जायँ.

अन्त में अपना वक्तव्य समाप्त करते हुए आप विद्वानों से अभ्यर्थना करता हूँ कि—मेरे वक्तव्य में अपूर्णता रही हो उसके लिये क्षमा करें. साथ ही मेरे वक्तव्य को आप लोगों ने शान्तिपूर्वक सुना है इसके लिये आपको धन्यवाद. साथ ही मैं चाहता हूं कि हमारी इस विद्यापरिषद् द्वारा समान भावपूर्वक संशोधन का जो प्रयत्न हो रहा है उससे विशुद्ध आर्यधर्म, शास्त्र, साहित्य एवं समस्त भारतीय प्रजा की विशद दृष्टि के साथ तात्त्विक अभिवृद्धि-समृद्धि हो.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org